शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 18 अंक 100 (मूल क्रमांक 157)
मार्च-अप्रैल 2025 मूल्य: ₹ 50.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सहसम्पादक
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
हिमांशु बावनकर

सम्पादकीय सलाहकार
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण: राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग: कमलेश यादव

शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 18 अंक 100 (मूल क्रमांक 157)
मार्च-अप्रैल 2025

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ: ***गार्टर साँपों का समूह।*** **पिछला आवरण:** ***ऑर्किड मधुमक्खी।*** जहाँ नर गार्टर साँप मादा गार्टर साँपों की गन्ध छोड़कर सर्दियों की अकड़न मिटाते हैं, वहीं नर ऑर्किड मधुमक्खियाँ मादाओं को आकर्षित करने वाली गन्ध छोड़कर अन्य नरों के पैर तोड़ देती हैं। ये कैसी खुशबुएँ हैं जो जीव जगत में अजब-गज़ब मदहोशी फैलाती हैं? जानने के लिए पढ़िए पृष्ठ 05 पर विपुल कीर्ति शर्मा का गन्धमय लेख।

कवर 3: ***व्हाइट ट्री-फ्रॉग (Hyla Coerulea) ऑस्ट्रेलिया में पाया जाने वाला एक मेंढक।*** वैसे तो यह मेंढक कई तरह के कीटों, पतंगों, बीटल, मकड़ियों को अपना भोजन बनाता है लेकिन कभी-कभी छोटे स्तनधारियों जैसे चूहे का भी शिकार कर लेता है। चूहे को निगलते समय मुँह को पूरा खोलने के बाद भी आँखों को अन्दर भींचना, निगलने की प्रक्रिया को आसान बनाता है।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : कवर 1 - https://www.science.org/content/article/garter-snakes-make-friends-organize-their-society-around-females
कवर 4 - https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Orchid_Bee_hovering.jpg

इस अंक में उन चित्रों के स्रोत जिनके बारे में चित्र या लेख से साथ उल्लेख नहीं है, इंटरनेट की विविध वेबसाइट हैं।

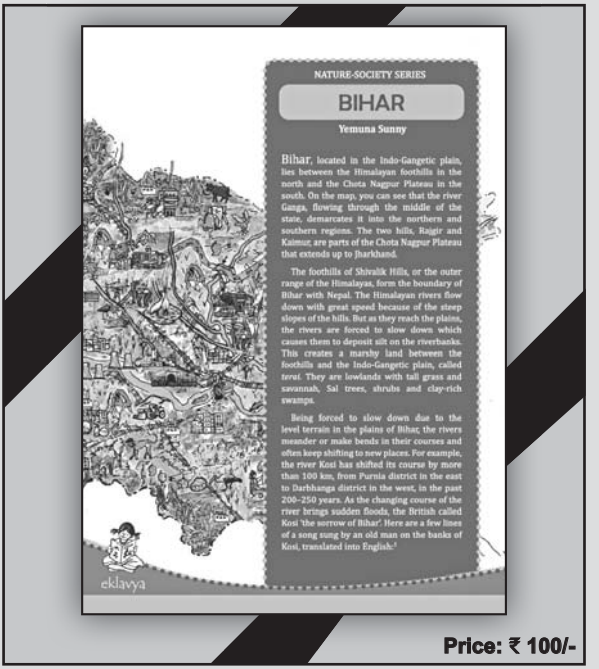

Price: ₹ 100/-

Nature-Society Series

BIHAR

A collection of innovative maps by Yemuna Sunny, critical geographer and teacher, this series is an asset to geography classrooms, libraries, and teacher educational institutions, among others. Using beautiful, distinct icons, these maps clearly mark the physical spaces while conveying the type of human interactions with nature in each of them. The accompanying booklets provide information on the regions including their history geographical features, environment, people and intersections of each of these.

Practising and aspiring teachers, educators, learners of all ages, geographer, ecologists and especially you, our dear reader, would enjoy learning about Bihar's unique ecology through this edition. It's a promise.

---

eklavya

To place the order-
EKLAVYA FOUNDATION
Jamnalal Bajaj Parisar, Jatkhedi, Bhopal,
Madhya Pradesh, 462026, India.
Phone: +91 755 297 7770-71-72; Email: pitara@eklavya.in
www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

हज़ारों साल की निसर्गशाला: भाग 1

गणित और मानव जीवन का रिश्ता कितना पुराना है? आदिमानवों के जीवन में गणित कितनी अहमियत रखता होगा? गिनना, जोड़ना, घटाना, भाग करना – भला उन्हें इनकी ज़रूरत क्यों होती होगी? क्या वे भी ये सब किसी कक्षा में बैठकर सीखते थे, या फिर चारों ओर फैली हुई प्रकृति ही उनकी पाठशाला थी? आमोद कारखानीस की इस गणित-कथा में हज़ारों सालों का सफर है जो अगले कुछ अंकों में जारी रहेगा।

13

बिट्टू के. राजारमन के साथ स्टेम की सैर

विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग, गणित – स्टेम – आम धारणा में ये सब वस्तुनिष्ठता को सर्वोपरि रखने वाले क्षेत्र हैं। मगर वस्तुनिष्ठता से अन्तर्क्रिया तो व्यक्ति ही करते हैं, इसलिए उस पर, और अन्ततः स्टेम पर, व्यक्तिनिष्ठता का असर तो पड़ता ही है। अब ज़ाहिर है, असर डालने वाले व्यक्ति ही यदि सीमित और अन्यों को वंचित रखते हुए होंगे, तो स्टेम भी सीमित और अन्यों को वंचित रखता हुआ होगा। ऐसे में, क्या होता है जब किसी वंचित वर्ग का व्यक्ति स्टेम में प्रवेश करता है? उस व्यक्ति की पहचान किस तरह न सिर्फ स्टेम के ढाँचों से जूझती है, बल्कि उन्हीं ढाँचों को चुनौती देते हुए ज्ञान, विविधता, समता और समावेशन के नए क्षितिज निर्मित करती है। ऐसे ही एक व्यक्ति – बिट्टू – का यह साक्षात्कार भारत में एक क्वीअर व ट्रांस वैज्ञानिक होने के अनुभवों पर ज़रूरी रोशनी डालता है।

19

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-100 (मूल अंक-157), मार्च-अप्रैल 2025

इस अंक में

05 | यौन-आकर्षण और गन्ध
विपुल कीर्ति शर्मा

13 | हज़ारों साल की निसर्गशाला: भाग 1
आमोद कारखानीस

19 | बिट्टू के. राजारमन के साथ स्टेम की सैर
ध्रुवी निर्मल और बिट्टू के. राजारमन

31 | शिक्षा की अलख जगाती गोनिया बाई
प्रियंका कुमारी

37 | कहानियाँ - बच्चों के अन्तर्मन तक पहुँचने का ज़रिया
वरुण गुप्ता

47 | रियाज़ का रहस्य
गोपाल मिड्ढा

53 | तोतिया तीतर
अनिल सिंह

59 | बच्चे, नागरिकता और कविता: भाग 1
समीना मिश्रा

68 | समय, दूरी और बच्चे: भाग 3
प्रकाश कान्त

76 | दाईं सूँड के गणेशजी
जयंत विष्णु नारलीकर

86 | पानी को उबालने पर उसके स्वाद में परिवर्तन क्यों...?
सवालीराम

फॉर्म 4 (नियम-8 देखिए)

भारतीय प्रेस और नियतकालिक पत्रिका रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 2023 की धारा 4 (2) के अन्तर्गत द्वैमासिक पत्रिका 'शैक्षणिक संदर्भ' से सम्बन्धित जानकारी

प्रकाशन स्थल :	भोपाल
प्रकाशन की अवधि :	द्वैमासिक
मुद्रक का नाम :	मे. भण्डारी प्रेस
राष्ट्रीयता :	भारतीय
मुद्रण का स्थान :	ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल, म. प्र. 462016
सम्पादक का नाम :	राजेश खिंदरी
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल, म. प्र. 462026
प्रकाशक का नाम :	टुलटुल बिस्वास
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल, म. प्र. 462026
स्वामी का नाम :	निदेशक, एकलव्य फाउण्डेशन
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल, म. प्र. 462026

मैं, टुलटुल बिस्वास, यह घोषणा करती हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

टुलटुल बिस्वास, एकलव्य फाउण्डेशन, मार्च 2025

यौन-आकर्षण और गन्ध

विपुल कीर्ति शर्मा

पिछले अंक में मच्छरों के उदाहरण से हमने जाना था कि मच्छरों की भिन-भिन में किस तरह प्रणय का गीत या प्रणय का आमंत्रण निहित होता है। जुगनू भी अपनी जलती-बुझती लाइट से प्रणय निमंत्रण ही प्रेषित कर रहा होता है। इस बार हम देखेंगे कि यौन या सेक्स के लिए पार्टनर को खोजने या उसे आकर्षित करने में जीव के शरीर से निकलने वाली गन्ध क्या भूमिका निभाती है।

जन्तु-जगत के अधिकांश प्राणी सेक्स के लिए अपने साथी को देखकर पहचानने की बजाय गन्ध के द्वारा ही पहचान पाते हैं। उनकी प्रजनन की सफलता का श्रेय उनकी गन्ध की पहचान और संवेदनशीलता को दे सकते हैं। गन्ध को पहचानने की इस क्षमता की भूमिका सिर्फ प्रजनन में ही नहीं बल्कि अन्य अनेक जैविक प्रक्रियाओं के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। शिकार, भोजन के स्रोत का पता लगाना, अपने साथियों को सन्देश देना आदि महत्वपूर्ण कार्य भी गन्ध को सूँघने या गन्ध को छोड़ने से ही सम्पादित होते हैं। इसलिए प्राणियों में गन्ध को पहचानने के लिए विभिन्न प्रकार के अंगों का उपयोग होता है। उदाहरण के लिए, मानव में नाक की एपिथेलियम यानी आन्तरिक झिल्ली सूँघने का कार्य करती है जबकि अधिकांश कीट एंटेना द्वारा गन्ध का पता लगाते हैं। जीवों के जैव-विकास के दौरान सूँघने (घ्राण) की प्रणाली बदलती रही है। फिर भी गन्ध की पहचान करने वाले न्यूरॉन्स की संरचना एवं सामान्य गुणधर्म सभी जन्तुओं में लगभग एक-जैसे ही रहे हैं। उदाहरण के लिए, मछलियों में भी सूँघने के अंग पाए जाते हैं किन्तु उनकी आधारभूत संरचना एवं कार्य स्तनधारियों के घ्राण अंगों जैसे ही होते हैं।

गन्ध से सन्देशवाहक संकेत

जैसा कि पहले भी कहा गया है कि जीव गन्ध का उपयोग विपरीत सेक्स के साथी की पहचान करने तथा सेक्स के लिए लालसा प्रकट करने के अलावा, क्षेत्र निर्धारण के लिए, घुसपैठियों और शिकारियों को चेतावनी देने के लिए तथा भटकाकर छलने के लिए भी करते हैं। अनेक प्रकार के सन्देशों को गन्धयुक्त रसायनों के मार्फत आसपास फैलाया जाता है। प्राचीन समय में ही यूनानी यह जान गए थे कि सेक्स के लिए

तैयार मादा कुत्तों की गन्ध नर कुत्तों को आकर्षित करती है। इसी तरह एक घायल मधुमक्खी के विपत्ति में होने पर गन्धयुक्त रसायन का संकेत साथी मधुमक्खियों को मदद के लिए बुलाने में उपयोगी होता है।

प्रायः आपने बगीचों में एक तितली के पीछे कई तितलियों को भागा-दौड़ी करते हुए देखा होगा। असल में, यह अनेक नर तितलियों का समूह होता है, जो एक युवा मादा की गन्ध से आकर्षित होकर उसका पीछा करता है। यह सब मादा की गन्ध का कमाल है जो नरों को अपनी ओर आकर्षित करती है। परन्तु गन्ध के रसायनों (फेरोमोन्स) की मात्रा इतनी कम होती है कि मानव नाक को इन्हें सूँघकर महसूस कर पाना सम्भव नहीं है।

अब हम जानते हैं कि गन्ध के रसायनों में मामूली भिन्नता भी दिए गए संकेतों में भारी अन्तर उत्पन्न कर सकती है तथा जन्तुओं के व्यवहार में बड़ा बदलाव ला सकती है। वैज्ञानिकों को लगता है कि अन्य सभी जानवरों की तरह मानव शरीर भी गन्धयुक्त रसायन छोड़ता है तथा तदनुरूप हमारा व्यवहार भी शायद अदृश्य गन्ध के संकेतों से प्रभावित होता है। मानव में यह गलत धारणा व्याप्त है कि हमारे शरीर की गन्ध बदबूदार और अवांछनीय है। इस समझ के चलते हम शरीर से निकलने वाली प्राकृतिक गन्ध तथा रसायनों को रगड़-रगड़कर साबुन व शैम्पू से मिटाने में जुट जाते हैं या परफ्यूम व डिओडोरेंट से छुपा देते हैं। इस प्रकार हम अक्सर शरीर से निकलने वाले रसायनों की उपेक्षा करते हैं। जबकि ये रासायनिक संकेत व्यापक रूप से बड़े-से-बड़े स्तनधारियों से लेकर बेहद सूक्ष्म अकशेरुकी जन्तुओं तक में भी व्यवहार को प्रभावित करते हैं और अधिकांशतः प्रणय का आमंत्रण होते हैं। इसी प्रकार सेक्स के लिए चयन करते समय जन्तु फेरोमोन्स के आधार पर बेहतर साथी को चुनते हैं।

फेरोमोन्स की विविधता और कार्य

सेक्स के लिए उत्पन्न होने वाले रसायनों की विविधता और उनके कार्य जानकर तो आपको भी हैरानी होगी। ये रसायन सेक्स जोड़ीदार को बुलाने और सेक्स को चरम अवस्था पर पहुँचाने के लिए प्रयुक्त होते हैं। इसके अलावा सेक्स के लिए दीवाने प्रेमी का शिकार करने में भी इनका उपयोग होता है।

पिछले 50 वर्षों में इन रसायनों की अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा को भी पृथक करके, इन्हें पहचानने की तकनीक विकसित होने से अब हमें यह निश्चित रूप से ज्ञात हुआ है कि फेरोमोन्स सभी प्रकार के जन्तुओं में स्रावित होते हैं, चाहे वे जल में रहने वाले लोब्स्टर, स्क्विड, सैलामैंडर्स या मछली हों या ज़मीन पर रहने वाले

चूहे, खरगोश, शेर तथा कुत्ते। सेक्स के लिए उद्दीपन के अलावा फेरोमोन्स के अनेक कार्य होते हैं। उदाहरण के लिए, हाल ही में माँ बनी खरगोश से निकलने वाले कुछ फेरोमोन्स बच्चों को माँ का दूध पीने के लिए उकसाते हैं। अनेक सामाजिक कीट जैसे - चींटी, वास्प और मधुमक्खी आदि में हमला होने पर निकलने वाले फेरोमोन्स साथियों को दल-बल सहित अपने परिवार के अन्य सदस्यों को दुश्मन पर हमला करने के लिए बुलाते और उकसाते हैं।

गन्ध स्राव में नर की भूमिका

अनेक अकेशेरुकियों में मादा को आकर्षित करने में प्रयासरत नर की इच्छा हमेशा यही रहती है कि चयनित मादा केवल उसके साथ ही सेक्स करे तथा उसके शुक्राणुओं का ही उपयोग करे। अगर एक ही इलाके में अनेक नर हों तो एक नर से सम्भोग के बाद भी मादा अन्य नरों की ओर आकर्षित हो सकती है। यह पहले नर के लिए बहुत चिन्ता का विषय होता है। ऐसी परेशानियों को हल करने के लिए नरों की कुछ रणनीतियाँ होती हैं। वे न सिर्फ कुँवारी मादा को आकर्षित करने वाले फेरोमोन्स स्रावित करते हैं बल्कि मैथुन के बाद वह मादा अन्य नरों के लिए आकर्षक न रहे, ऐसे फेरोमोन्स भी स्रावित करते हैं। ये एंटी-एफ्रोडिसिएक फेरोमोन (एएपी) कहलाते हैं। इस प्रकार मादा एक ही नर से सन्तानोत्पत्ति कर सकती है। मादा के लिए भी एक ही नर से सम्बन्ध बनाना कई बार अन्य उत्पीड़ित करने वाले नरों से बचने का बेहतर तरीका होता है।

एक दूसरे पक्ष पर भी विचार करते हैं जहाँ सम्बन्ध बना चुकी मादा को अगर बेहतर नर मिलता है या पहला नर घटिया हुनर वाला रहा हो तथा विवशता में मादा ने नर को स्वीकार किया हो तब ऐसी सभी परिस्थितियों में पहले साथी से छुटकारा पाना

चित्र-1: पेराट्रेकालिआ ऑर्नाटा नर मकड़ी मादा को सेक्स फेरोमोन्स से सने रेशम से लपेटकर शिकार देती है। शिकार रूपी उपहार को पाते ही मादा सम्भोग की मुद्रा में आ जाती है।

बेहतर उपाय है। अनेक अकशेरुकी प्रजातियों की मादाओं में नरों द्वारा उत्पन्न एएपी को बेअसर करने वाले रसायन भी पाए जाते हैं।

नर द्वारा मादा के जननांगों में डाले गए फेरोमोन्स में हमेशा कामोत्तेजना कम करने वाले एएपी रसायन ही नहीं होते बल्कि कई बार इनमें नर को या उसके कुछ अंगों को अधिक आकर्षक बनाने वाले रसायन भी होते हैं। उदाहरण के लिए, उपहार देने वाली मकड़ी, *पेराट्रेकालिआ ऑर्नाटा* (*Paratrechalea ornata*) के नर अपने शिकार को रेशमी धागों में लपेटकर उपहार स्वरूप मादा मकड़ियों को भेंट करते हैं। लपेटा गया रेशम सेक्स फेरोमोन्स में सना हुआ होता है। उपहार ग्रहण करते ही मादा मदहोश हो जाती है और तुरन्त सम्भोग की मुद्रा में आ जाती है। इस प्रकार नर को मादा से यौन सुख प्राप्त होता है और मादा को खाने के लिए शिकार का उपहार! ऑस्ट्रेलिया में पाई जाने वाली ज़मीनी झिंगुरों की एक प्रजाति *टेलिओग्राइलस ओशियेनिकस* (*Teleogryllus oceanicus*) को ही लीजिए। इस प्रजाति की मादाएँ जोड़ा बनाने के लिए प्रभावी नरों का ही चयन करती हैं लेकिन कई बार फेरोमोन्स के आकर्षण में कमज़ोर नरों को भी सम्भोग का अवसर मिल जाता है।

पायरिस रैपे (*Pieris rapae*) तितली पश्चिमी यूरोप, यूरेशिया और उत्तरी अमेरिका में पाई जाने वाली हरी शिराओं के पंख वाली एक सफेद रंग की तितली है। मादा कई नरों से जोड़ा बनाना पसन्द करती है। अनेक नरों से प्राप्त शुक्राणुओं में कड़ा मुकाबला होता है। मादा के जननांगों में सबसे पहले पहुँचे शुक्राणु को ज़्यादा फायदा मिलता है। प्रत्येक नर मादा से सेक्स करते हुए शुक्राणुओं के साथ भारी मात्रा में पोषक तत्व भी मादा को उपलब्ध करवा देता है। यदि पहला नर यह सब कर लेता है तो मादा अन्य नरों से सम्भोग में देर लगाती है और पहले नर को इसका लाभ मिलता है। सन्तुष्ट मादा अण्डे

चित्र-2: फेरोमोन्स में नर को अधिक आकर्षक बनाने वाले रसायन भी पाए जाते हैं। टेलिओग्राइलस ओशियेनिकस नाम की झींगुर प्रजाति की मादाएँ सम्भोग के लिए वैसे तो प्रभावी नर को चुनती हैं लेकिन फेरोमोन्स के आकर्षण में कमज़ोर नरों को भी सम्भोग का अवसर मिल जाता है।

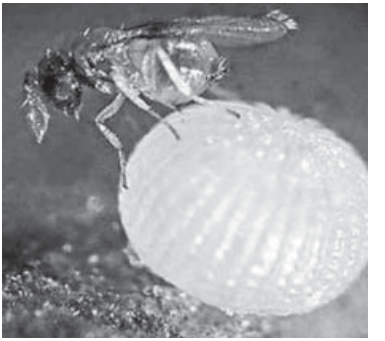

चित्र-3: *पायरिस रैपे तितली (बाएँ) की मादा सम्भोग के बाद 20-50 अण्डे देती है। नर तितली द्वारा मादा के अन्दर डाले गए एएपी की गन्ध अण्डे देते ही वातावरण में फैल जाती है। एएपी में बेंज़ाइल साइनाइड होता है जिसकी गन्ध ट्राइकोग्रेम्मा (दाएँ) नामक परजीवी वास्प सूँघ लेती है और उन अण्डों पर अपने लार्वा छोड़ देती है। वास्प के लार्वा तितली के अण्डों को खाकर वृद्धि करते हैं। (दूसरे चित्र में अण्डा और ततैया, दोनों के आकार को काफी बढ़ाकर दिखाया गया है।)*

देने के लिए उपयुक्त पौधे को खोजकर सलीके से 20-50 अण्डे समूह में जमाकर रख देती है। अण्डे देने के साथ ही एएपी की गन्ध वातावरण में फैल जाती है। नर तितली द्वारा डाले गए एएपी में प्रमुख घटक बेंज़ाइल साइनाइड होता है जिसकी गन्ध को ट्राइकोग्रेम्मा (Trichogramma) नामक परजीवी वास्प सूँघ सकती है। वास्प के लिए यह एक सुनहरा अवसर होता है क्योंकि उसे यह ज्ञात है कि प्रजनन के बाद मादा तितली अण्डे देगी और वास्प उन अण्डों पर अपने लार्वा छोड़ सकेगी। वास्प के लार्वा तितली के अण्डों को खाकर वृद्धि करते हैं। इस प्रकार परजीवी वास्प और तितली का जीवन संघर्ष चलता रहता है।

कभी-कभी सेक्स का अवसर प्राप्त न कर सकने वाले सभी कमज़ोर एवं कम आकर्षक नर, सम्भोग की सम्भावनाओं को बढ़ाने के लिए अनेक प्रकार के क्यूटिकुलर (cuticular) यौगिकों की सान्द्रता बढ़ा देते हैं और इससे वे मादाओं को आकर्षित करने में सफल हो सकते हैं।

ट्राइब युग्लोस्सिनी (tribe euglossini) तथा सबफेमिली एपिडी की नर ऑर्किड मधुमक्खियाँ नियोट्रॉपिकल ऑर्किड फूलों से पराग एकत्रित करते हुए 10 प्रतिशत वनस्पतियों का परागण करने का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती हैं। इनके पैर के टिबियल खण्ड के छोर पर टिबियल थैली पाई जाती है जिनमें ये फूलों के पराग को एकत्रित करके रखती हैं। पर इनकी खास बात यह है कि इनके नर स्वयं के लिए ऐसे विशेष सुगन्धित पदार्थ तैयार करते हैं जो अन्य नरों से भिन्न

होते हैं। इस विशिष्ट सुगन्ध को उत्पन्न करने में वे फफून्द, गीली-भीगी पत्तियों, सड़ती लकड़ी के ठूँठ, रेज़िन गोंद, सड़ते फल और विष्ठा तक का उपयोग करते हैं। ये सुगन्धित पदार्थ नर अपनी टिबियल थैली में संग्रहित करते हैं। मादा के समक्ष ऐसे नर अपनी विशिष्ट सुगन्ध के कारण बेहतर सफलता पाते हैं। मादाओं के सामने प्रेमालाप करते समय नर अपने पैरों को ऊपर उठाकर तथा विशेष सुगन्ध से भरी टिबियल थैलियों से खुशबू को फैलाकर मादा को मदहोश कर देते हैं। असामान्य और अनूठी खुशबू वाले नर प्रतिद्वन्द्वियों से बेहतर सिद्ध होते हैं। फिर भी हारे हुए नर पीछे नहीं रहते, वे आक्रमण करके युद्ध करते हैं और ऐसे नरों की खुशबू वाली टाँगें तोड़ देते हैं। मादा को पाने के लिए नरों के बीच की प्रतिस्पर्धा कई बार स्वस्थ नहीं होती और धोखा देने की कला में भी बदल जाती है।

केनेडा के मेनिटाकबा कस्बे में हर बसन्त ऋतु सेलानियों के लिए अजूबे वाली होती है। साल के इस समय शीत निद्रा खत्म होते ही, चूना पत्थरों से बनी गुफाओं से अचानक हज़ारों गार्टर साँप (Garter Snake) निकलने लगते हैं। नरों के बीच मादा से मैथुन करने की तीव्र प्रतिस्पर्धा देखते ही बनती है। शुरुआत में तो ठण्ड से अकड़े इनके शरीर में जान कम दिखती है और शिकारी पक्षी भी इनका शिकार आसानी-से कर लेते हैं। फिर सभी नर एकसाथ ऐसे हॉर्मोन स्रावित करते हैं जिनकी गन्ध मादा के हॉर्मोन जैसी होती है। इस गफलत में सारे नर एक-दूसरे को मादा समझकर एक-दूसरे से लिपट जाते हैं। लिपटकर, घर्षण से गर्माहट फैलती है और फिर सभी नर सामान्य तापमान पर आ जाते हैं। ऐसा होते ही सभी नरों में से मादा जैसे हॉर्मोन्स का स्राव बन्द हो जाता है और वे मादाओं की खोज में निकल पड़ते हैं। बड़े-बड़े समूहों में इनके मैथुन का दृश्य दर्शकों को बहुत लुभाता है।

गन्ध स्राव में मादा की भूमिका

रसायनों के उपयोग से नरों द्वारा मादा को आकर्षित करने के कई उदाहरण हमने ऊपर देखे हैं। क्या मादा भी विपरीत सेक्स को आकर्षित करने वाले रसायन छोड़ती है। अधिकांश मामलों में मादा भी नर को रसायनों द्वारा यह जता देती है कि वह लैंगिक रूप से परिपक्व हो गई है। अनेक ऐसे अकशेरूकी जन्तु जो दूर से ही विपरीत सेक्स को आकर्षित करते हैं, उनमें तो मादा द्वारा स्रावित रसायन ही प्रमुख रूप से सहायक होते हैं। नरों के लिए यह पहचानना भी आवश्यक होता है कि क्या मादा इस प्रजनन ऋतु में पहले ही किसी नर के साथ सम्भोग कर चुकी है। मादा के बारे में यह जानकारी नर उसकी गन्ध से ही ले लेते हैं। ऐसे ही प्रयास में संलग्न नर कई बार गलती

चित्र-4: *नर गार्टर साँप ठण्ड से अकड़े हुए अपने शरीर को सामान्य करने के लिए एकसाथ ऐसे हॉर्मोन स्रावित करते हैं जिनकी गन्ध मादा के हॉर्मोन जैसी होती है। इस वजह से सारे नर एक-दूसरे को मादा समझकर एक-दूसरे से लिपट जाते हैं। घर्षण से गर्माहट फैलती है और सभी नर सामान्य तापमान पर आ जाते हैं।*

से ऐसी मादा के काफी करीब पहुँच जाते हैं जो पहले ही किसी दूसरे नर के साथ सम्भोग कर चुकी होती है। ऐसी मादा उस नर को बेरहमी से खा जाती है। कई बार नर सम्भोग करते-करते ही मादा के हाथों मारे जाते हैं तो कई बार सम्भोग के अन्त में मारे जाते हैं। इसे यौन नरभक्षण (sexual cannibalism) कहते हैं। ऐसी स्थिति में कुँवारी मादा को खोज लिया जाए तो ही मकसद पूर्ण होता है। यहाँ कुँवारी से आशय उस मादा से है जिसने उस प्रजनन ऋतु में मैथुन न किया हो।

चक्के के समान गोल जाले बनाने वाली कुछ मादा ऑर्ब मकड़ियों (Orb-weaver spider) द्वारा छोड़े गए फेरोमोन्स नर को मदमस्त कर देते हैं और वे स्वेच्छा से मादा का भोजन बन जाते हैं। प्रयोगों में यह भी सिद्ध हुआ है कि पहले से सम्भोग कर चुकी मादा की तुलना में, नरों का आकर्षण कुँवारी मकड़ियों के लिए कहीं अधिक होता है। कुँवारी मकड़ियों से मिलने का मौका जब भी नरों को मिलता है, वे आशिकी में स्वयं का बलिदान करने के लिए आतुर हो जाते हैं।

विपुल कीर्ति शर्मा: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में प्राणिशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर। इन्होंने 'बाघ बेड़स' के जीवाश्मों का गहन अध्ययन किया है तथा जीवाश्मित सीअर्चिन की एक नई प्रजाति की खोज की है। नेचुरल म्यूज़ियम, लंदन ने सम्मान में इस प्रजाति का नाम उनके नाम पर *स्टीरियोसिडेरिस कीर्ति* रखा है। वर्तमान में, वे अपने विद्यार्थियों के साथ मकड़ियों पर शोध कार्य कर रहे हैं।

लिखना सीखने-सिखाने का बुनियादी ताना-बाना

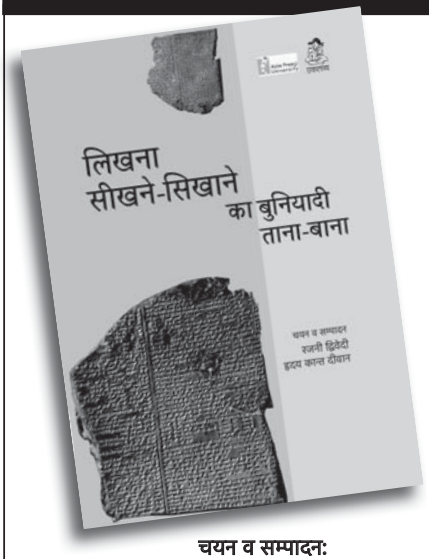

चयन व सम्पादन:
रजनी द्विवेदी व हृदय कान्त दीवान

लिखना अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण रूप और भाषा का एक प्रमुख कौशल है। लिखना सीखने-सिखाने के ताने-बाने की बुनियादी समझ हरेक शिक्षक के लिए आवश्यक है क्योंकि तभी वे बच्चों के लिखना सीखने की प्रक्रिया, लिखना सीखने में उन्हें होने वाली समस्याओं और लिखना सिखाने के सही तरीकों के बारे में जान पाएँगे। *लिखना सीखने-सिखाने का बुनियादी ताना-बाना* किताब में इन्हीं विषयों पर शुरुआती समझ विकसित करने वाले आलेखों को शामिल किया गया है।

इसमें लिखने को लेकर बने नीतिगत दस्तावेज़ों की आलोचनात्मक समीक्षा तो है ही, साथ ही, स्कूलों में लिखना सीखने-सिखाने के मौजूदा तौर-तरीकों में समस्याओं, प्राथमिक से लेकर उच्च-प्राथमिक कक्षाओं में लिखना सिखाने के लिए की जा सकने वाली गतिविधियों, व शिक्षकों को लिखना कैसे सिखाया जाए जैसे कई ज़रूरी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक के चार खण्डों में लिखना क्या है, लिखना सिखाने, इसके परिप्रेक्ष्यों, इसके आकलन और विश्लेषण व लिखना सिखाने की तैयारी से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई है।

भाषा शिक्षण के बुनियादी पहलुओं पर रोशनी डालने वाली किताबों की शृंखला की यह तीसरी किताब है जिसका विकास अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय और एकलव्य ने मिलकर किया है। यह किताब भाषा शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों व बच्चों को लिखना सिखाने में मदद करनेवाले अन्य लोगों को लिखना सीखने-सिखाने के विभिन्न पहलुओं को समझने में मददगार साबित होगी।

अपनी प्रति बुक कराने के लिए सम्पर्क करें...

एकलव्य फाउंडेशन

जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)

फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**

www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

एकलव्य

हज़ारों साल की निसर्गशाला

आमोद कारखानीस

अक्सर स्कूल में जब गणित से पाला पड़ता है तो कई लोगों के मन में यह सवाल स्वाभाविक रूप से उठता होगा कि आखिर गणित को किसने बनाया। जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग,लघुत्तम समापवर्तक से लेकर त्रिकोणमिति, केल्कुलस तक गणित फैला हुआ है। सारा गणित न तो एक दिन में इस रूप में उभर आया, न ही गणित किसी एक व्यक्ति या एक संस्कृति या एक देश-विशेष की देन है। साझा सहयोग से और एक-दूसरे के साथ शेयरिंग से ही गणित इतने परिष्कृत रूप में विकसित हुआ है।

फिर भी एक सवाल तो मन में उठता ही होगा कि प्राक-ऐतिहासिक समय में जब इन्सान शिकार और खाद्य पदार्थ बटोरकर अपना गुज़ारा कर रहे थे, क्या उस समय भी इन्सान के पास गणित हुआ करता था। इसका जवाब होगा, "हाँ, ज़रूर।" लेकिन सम्भवत: उनका गणित उनकी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने के लिहाज़ से उपजा था।

प्रत्यक्ष साक्ष्यों एवं ठोस सबूतों के अभाव में यह कह पाना कठिन है कि एक लाख साल पहले इन्सान को किस तरह का गणित यकीनी तौर पर आता ही होगा। ऐसे हालात में लेखन में अक्सर कल्पनाशीलता का सहारा लेकर कुछ प्रसंगों-घटनाओं का ऐसा ताना-बाना बुना जाता है कि कथानक के सहारे लेखक अपनी बात को समझा पाए। इस कल्पनाशीलता की वजह से पाठकों को कई बार ऐसा लग सकता है कि वास्तव में बिलकुल ऐसा ही हुआ होगा परन्तु उस अर्थ में ये सच्ची कहानियाँ नहीं हैं।

परन्तु दूसरी ओर यह भी सही है कि इन लेखों में जिन घटनाओं का ज़िक्र किया गया है, वे पूर्णत: काल्पनिक नहीं हैं और किसी-न-किसी ऐतिहासिक तथ्य व प्रमाण पर आधारित हैं। इस शृंखला का उद्देश्य आपको इस तथ्य से रूबरू कराना है कि गणित किन विविध पड़ावों से गुज़रता हुआ आज हमारे पास पहुँचा है, साथ ही, यह समझाने का प्रयास भी है कि

गणित का तत्कालीन समाज पर और सामाजिक परिस्थितियों का गणित पर किस तरह से प्रभाव रहा है। उम्मीद है कि आप इस लेख श्रृंखला को इसी भावना के साथ पढ़ेंगे।

इस लेख की पहली किश्त में इन्सान के घुम्मकड़ जीवन से शुरुआत की गई है। कुछ शिकार, कुछ फल-कन्द-बीज-शहद बटोरना, उस समय का सामूहिक जीवन और मनोरंजन – ऐसे ही कुछ दृश्य इसमें शामिल हैं। धीरे-धीरे इन्सान ने संख्या, मापन, आकार, पैटर्न को समझना शुरू किया जो आगे चलकर गणित की जटिल अवधारणाओं की नींव बने। तो, इस लेख श्रृंखला में हम गणित के ऐसे ही कुछ रोचक किस्सों और गणित की यात्रा के बारे में पढ़ेंगे।

प्राक्-ऐतिहासिक समय की बात है, यानी लगभग 100 से 200 हज़ार साल पुरानी। अभी इन्सान ने धरती पर अपना वर्चस्व स्थापित नहीं किया था। वो भी अन्य प्राणियों की तरह जीवन की मूलभूत ज़रूरतों के लिए संघर्षरत था। इसी दौर में अमेज़न के घने जंगलों में 15-20 आदिमानवों का एक समूह रास्ता बनाकर, सावधानीपूर्वक आगे बढ़ता जा रहा था। तभी, आगे शिकार के लिए जानवर की तलाश करने गया एक युवा दौड़ता हुआ आता है।

"उधर जंगल में एक बड़ा-सा जानवर चारा खा रहा है।" वह यह बात इशारे से बताता है। वजह साफ है कि शिकार के समय ज़ोरों से बात नहीं करनी है और दूसरी बात, अभी तक भाषा भी शायद पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुई थी।

जिस प्राणी का शिकार करना था, वो खासा विशाल था। उस पर यदि सुनियोजित तरीके से हमला नहीं किया तो वह दो-चार आदिमानवों को घायल करके भाग जाएगा। इसलिए उस प्राणी के शिकार की योजना ठीक से ही बनानी चाहिए। सभी लोग अपने हथियार लेकर शिकार के लिए तत्पर हो जाते हैं। समूह में 40-45 साल का एक व्यक्ति उनका मुखिया है। उसे शिकार और इस जंगल का अच्छा खासा अनुभव है। तत्परता से उसने शिकार के सभी सूत्र अपने हाथों में ले लिए।

मुखिया रणनीति बनाते हुए सोचना शुरू करता है कि बाईं ओर एक झरना है इसलिए वह प्राणी उस ओर तो नहीं जाएगा। इस वजह से उस तरफ ज़्यादा लोगों की ज़रूरत नहीं होगी। लेकिन किसी भी तरह उसे दाहिनी तरफ के जंगल में घुसने नहीं देना है। इसलिए वहाँ प्राणी को भाले

से रोकने वाले और शोर-गुल करने के लिए ज़्यादा लोग रखने होंगे। इसके अलावा सबसे अनुभवी तीन-चार लोग सामने से हमला करेंगे। ऐसे आक्रमण करना खतरनाक है फिर भी शिकार करने के लिए सामने से हमला करके प्राणी की छाती में भाला घुसेड़ना ज़रूरी है। तो इस तरह से योजना बन गई।

"उनी उकुसर यानी तुम दो लोग पीछे से जाओ।"

"उकुसर-उकुसर-उकुसर दाहिनी ओर।"

"तुम उरापोन-उकुसर बाईं ओर।"

उपरोक्त संवाद में 'उरापोन यानी एक', 'उकुसर यानी दो'। इससे बड़ी संख्या के लिए कोई शब्द ही नहीं होता था। यदि 4 या 6 कहना हो तो दो बार या तीन बार उकुसर कहना होता था। 3 कहने के लिए एक जमा दो यानी उरोपोन उकुसर कहना होगा।

आदि-मानवों की भाषा में अभी बड़ी संख्याओं के लिए पर्याप्त शब्द नहीं थे। लेकिन अब उनकी ज़रूरत को शिद्दत से महसूस किया जा रहा था और यही शायद मानसिक विकास की पहली सीढ़ी भी थी।

* * *

इन्सान अभी भी खानाबदोश या घुम्मकड़ जीवन जी रहा है। ऊपर से बारिश के दिन। चार फुट की दूरी के पार भी देख पाना मुश्किल, इतनी घनी झाड़ियाँ और दरख्त थे - ऐसे समय शिकार करना तो दूर की बात, जंगल में और अधिक भीतर जाना भी

जोखिम भरा था। कब और कहाँ कोई वन्यजीव आप पर हमला कर देगा, पता भी नहीं चलेगा। ऐसे में भोजन के लिए शिकार के अलावा कुछ और खोजना चाहिए। बारिश में जंगल में पत्ते एवं कन्द-मूल बड़ी तादाद में उपलब्ध हैं और घुम्मकड़ी की वजह से इन्सान यह जानता है, और इस बात का अन्दाज़ भी है कि ये कहाँ मिल जाएँगे। कुछ लोगों ने सुबह-सुबह ही जंगल में घूमते हुए पाँच-छह बड़े कन्द खोद निकाले हैं। अब खाने के लिए इन कन्दों को पत्थर के चाकू से काटकर टुकड़े करना और पकाना है। इस दौर तक भोजन पकाने की खोज भी हो चुकी थी। जो कुछ भी खाद्य सामग्री मिलेगी, उसे समूह में बराबर-बराबर बाँटना, यह समूह का नियम था।

अब यदि सबके बीच समान-समान बाँटना है तो समूह में कितने लोग हैं और हरेक को कितने-कितने टुकड़े मिलेंगे, इसका भी अन्दाज़ा लगाना आना चाहिए। यह शायद भाग देने की क्रिया की शुरुआत थी।

जंगलों में रहने वाले हमारे पुरखों के जीने के तौर-तरीके एकदम बुनियादी थे फिर भी उन्हें अब गणित की विविध संकल्पनाओं की ज़रूरत महसूस होने लगी थी। इन ज़रूरतों की वजह से गणित की संकल्पनाएँ जाने-अनजाने इन्सान की ज़िन्दगी में आहिस्ता-आहिस्ता दाखिल होती चली गईं।

* * *

जिसे आज हम सुहाने दिन कहते हैं यानी खास तौर पर ठण्ड के दिन। अब जंगल में भी मौसम बदल गया है। बरसात का मौसम समाप्त होकर हल्की ठण्डक महसूस हो रही है। जंगल में पतझड़ के पीले-लाल रंग के दरख्त और फूलों-फलों से लदे हुए पेड़, यहाँ तक कि गूलर, अंजीर जैसे कई पेड़ तो फलों से झुके जा रहे हैं। इस समय बाहर निकलकर शिकार करना भी आसान है।

ऐसी पृष्ठभूमि में हमारे पुरखों ने शाम को भरपेट भोजन किया है और गुफा के बाहर गरमाहट के लिए अलाव भी जलाया गया है। किसी ने खोखले लकड़ी के तने पर जानवर की खाल चढ़ाकर तैयार किए साज पर हाथों की थाप देकर धा, धिन, धिन.. की आवाज़ निकाली। इस आवाज़ के साथ समूह के लोग एक-दूसरे की कमर पर हाथ रखकर नृत्य की शुरुआत करते हैं। एक लय में कदम आगे-पीछे होते हैं – एक, एक-दो, एक-दो-तीन, फिर तीन-दो-एक, दो-एक, और एक - पाँव फिर से शुरुआती बिन्दु पर आ जाते हैं।

इस तरह संख्याएँ, अंक, गणित की क्रियाएँ, गणितीय पैटर्न और ऐसी कई अन्य अमूर्त संकल्पनाएँ बिना दस्तक दिए इन्सानी ज़िन्दगी में दाखिल होती चली गईं।

* * *

इन तीन किस्सों को देखते हुए समझ में आता है कि इन्सानी ज़िन्दगी में गणित ने प्रवेश कर लिया था। उसे संख्याओं की, गिनने की, समूह बनाने की ज़रूरत महसूस होने लगी थी। यही लोग आधुनिक गणित के पूर्वज थे। आज भी हम गणित की शुरुआत एक-दो-तीन गिनने से ही करते हैं और फिर सहजता से मुझे दो रोटी परोसो, मुझे एक नया ड्रेस चाहिए – इस तरह के वाक्य बोलने लगते हैं। खेलते हुए टीम या समूह बनाने के लिए बच्चों की गिनती करते हैं और विविध खेलों में भी सहजता के साथ गणित का इस्तेमाल करते हैं। स्कूल जाने के बाद हमारी गणित नामक औपचारिक विषय से मुलाकात होती है। इस विषय में पहाड़े याद करना, भिन्न समझना, लघुत्तम समापवर्तक, महत्तम समापवर्तक मालूम करना आदि में हम गोते लगाते रहते हैं। स्कूल में हमारी गणित में तरक्की कैसी भी हो तब भी हमें सब्ज़ीवाले से मोलभाव करके सही हिसाब करना तो आ ही जाता है। दसवीं कक्षा के बाद गणित से छुटकारा मिलने का एक एहसास ज़रूर बनता है लेकिन कॉलेज के दाखिले के समय कितने प्रतिशत अंक चाहिए, नौकरी में कितना वेतन होगा, कितने प्रतिशत मँहगाई भत्ता मिलता है – ऐसे कई मुद्दों के बारे में तो चर्चा होती ही है। इसी तरह हमारे मनपसन्द खेल क्रिकेट में रनों का औसत, या सरकार का जीएसटी बढ़ाना लाभदायक है या घाटे का सौदा, इस पर भी हम अपने

विचार व्यक्त करते ही हैं। कुल मिलाकर गणित हमारा पीछा नहीं छोड़ता।

इन्सानी ज़िन्दगी में संख्याएँ या गणित कब और कैसे दाखिल हुआ होगा? इसकी शुरुआत कैसे हुई होगी, तब कौन-से स्कूल हुआ करते थे? फिर किसने सिखाया होगा, इस गणित को? ऐसे ही कई सवाल आपके मन में उठने लगे होंगे।

चलिए, देखने की कोशिश करते हैं कि पक्के तौर पर क्या-क्या हुआ होगा और किस तरह घटित हुआ होगा।

...जारी

आमोद कारखानीस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। लेखन एवं चित्रकारी का शौक। मुम्बई में रहते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

सभी चित्र: प्रभाकर डबराल: पेशे से चित्रकार, प्रकृति प्रेमी, कहानीकार और डिज़ाइन शिक्षक हैं। लोगों की उत्पत्ति की कहानियाँ सुनना बहुत पसन्द करते हैं। स्वतंत्र चित्रकारी करते हैं। समानुभूति, करुणा और आत्म-साक्षात्कार फैलाने में सहायक बनकर अपने जीवन को जीने लायक बनाना चाहते हैं।

सभी चित्र मध्यभारत में गुफाओं में पाए जाने वाले शैलचित्रों की प्रतिकृतियाँ हैं।

सन्दर्भ:

• *अफ़्रीका एंड मेथेमेटिक्स,* दिर्क ह्यूलेब्रुक, प्रकाशक - स्प्रिंगर, 2019.

बिट्टू के. राजारमन के साथ स्टेम की सैर

समावेशन और खोजबीन का सफर

भारत में एक क्वीअर और ट्रांस वैज्ञानिक होने के नाते चुनौतियों और सफलताओं को लेकर एक जेंडरक्वीअर जीव वैज्ञानिक की प्रेरणाएँ, अनुभव और सूझबूझ

ध्रुवी निर्मल और बिट्टू के. राजारमन

बिट्टू के. राजारमन (he/they) जीव विज्ञान और मनोविज्ञान के सहायक प्राध्यापक हैं, और एक जेंडरक्वीअर ट्रांस[1] पुरुष हैं जो मानते हैं कि क्वीअर व ट्रांस मुक्ति के लिए जाति, वर्ग, क्षमतावानता और जेंडर का विनाश ज़रूरी है। वे भारतीय स्टेम (विज्ञान, टेक्नोलॉजी, इंजीनियरिंग व गणित) समुदाय के प्रतिष्ठित सदस्य हैं, और उन्होंने तंत्रिका-संज्ञान तथा कीट-सम्प्रेषण के क्षेत्र में अग्रणी काम किया है। विज्ञान में उनकी यात्रा, और साथ में, विविधता, समता व समावेशन को लेकर उनकी वकालत, दोनों मिलकर पहचान और अकादमिक क्षेत्रों के मिलन बिन्दु पर एक अनोखा परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत साक्षात्कार में, बिट्टू भारत में एक क्वीअर तथा ट्रांस वैज्ञानिक होने की चुनौतियों और फतह के सन्दर्भ में उनकी प्रेरणाएँ, अनुभव और सूझबूझ साझा कर रहे हैं।

प्रश्न: चलिए शुरू करते हैं, क्या आप विज्ञान के मार्ग में प्रवेश को लेकर अपनी पृष्ठभूमि, प्रेरणाओं और प्रमुख पड़ावों के बारे में कुछ बता सकते हैं? शुरुआत में आपको इस क्षेत्र में किस चीज़ ने आकर्षित किया था?

मुझे यहाँ बुलाने के लिए शुक्रिया। मुझे विज्ञान बहुत छुटपन से, पाँच-छः वर्ष की उम्र से, आकर्षित करता था। मेरे अभिभावक अकादमिक क्षेत्र में हैं, जिसका असर मुझ पर यकीनन हुआ। अलबत्ता, मैं मानता हूँ कि सारे बच्चे

---

[1] *ट्रांस दरअसल ट्रांसजेंडर का संक्षिप्त रूप है। ट्रांसजेंडर वे व्यक्ति होते हैं जिनकी जेंडर पहचान जन्म के समय निर्धारित लिंग से भिन्न होती है।*

क्वीअर (queer) से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों से होता है जो यौन सम्बन्धी सामान्य सामाजिक मानकों से मेल नहीं खाते। इनमें समलैंगिक, द्विलैंगिक, अलैंगिक, ट्रांस वगैरह शामिल किए जाते हैं।

कुदरती वैज्ञानिक होते हैं, अपने आसपास की दुनिया के प्रति जिज्ञासु होते हैं। बदकिस्मती से, स्कूल प्रायः उनकी इस कुदरती जिज्ञासा को निरुत्साहित करते हैं। विज्ञान में मेरे सफर का सम्बन्ध वैज्ञानिक करीयर के प्रति किसी विशिष्ट प्रोत्साहन से नहीं बल्कि अपनी इस कुदरती जिज्ञासा को सँभालकर रखने से था। मेरे लिए यह मेरी रुचियों और जुनून का अनुसरण करने की एक लम्बी यात्रा रही है, और सौभाग्य से, मैं इसे अपना करियर बना सका।

प्रश्न: ऐसा लगता है कि आपके परिवार की अकादमिक पृष्ठभूमि की काफी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। क्या ऐसा कोई खास क्षण या घटना थी जिसने विज्ञान में करीयर को लेकर आपके निर्णय को पक्का कर दिया हो, या यह एक धीरे-धीरे विकसित होता एहसास था?

यकीनन, यह काफी धीरे-धीरे विकसित हुआ था। यह सही है कि मेरे परिवार की अकादमिक पृष्ठभूमि ने बौद्धिक कौतूहल के लिए एक समृद्ध माहौल प्रदान किया था, लेकिन ऐसा कोई एक क्षण नहीं था जिसने मेरे निर्णय को पक्का कर दिया हो। मेरी यह समझने में हमेशा से गहरी रुचि थी कि चीज़ें काम कैसे करती हैं – चाहे वह प्रकृति हो, जीव-जन्तु हों, या ब्रह्माण्ड के बुनियादी सिद्धान्त। समय के साथ यह रुचि प्रगाढ़ होती गई, और मैं शोध व प्रयोगों की ओर आकर्षित होता गया। मामला वैज्ञानिक बनने का निर्णय लेने का उतना नहीं था, जितना बचपन के अचम्भे के भाव और कौतूहल को न गँवाने का। जैसे-जैसे मैं अपनी शिक्षा में आगे बढ़ा, रास्ता अपने-आप मुझे वहाँ ले आया जहाँ मैं आज हूँ।

प्रश्न: क्या आप अपने वर्तमान काम के बारे में तथा उस विशिष्ट शोध क्षेत्र के बारे में और बता सकते हैं जिसमें आप शामिल हैं? आपकी शोध का कौन-सा पहलू आपको सबसे अधिक उत्साहित करता है?

ज़रूर – मैं कीटों में संवाद-सम्प्रेषण और ज़ेब्राफिश में मात्रात्मक संज्ञान (quantitative cognition) पर काम करता हूँ। मेरा अनुसन्धान सम्प्रेषण व संख्या-बोध की तंत्रिका बुनियाद की छानबीन करता है। उदाहरण के लिए, भाषा में, अर्थ तक पहुँचने के लिए हम ध्वनियों के पैटर्न निकालते हैं। वहीं संख्याज्ञान में, हम मात्रात्मक पैटर्न निकालते हैं। ज़ेब्राफिश जैसे मॉडल जन्तुओं में इन प्रक्रियाओं को समझकर, हम इन संज्ञान क्रियाओं की पड़ताल बड़े पैमाने पर तंत्रिका चित्रण (न्यूरल इमेजिंग) की मदद से कर सकते हैं। मैं आर्थिक संज्ञान, सामाजिक विकल्प चयन और इन व्यवहारों की तंत्रिकीय बुनियाद के क्षेत्र में भी अध्ययन करता हूँ।

इन दो तरह के संज्ञानों के बीच समानताओं और भिन्नताओं का खुलासा करना, मेरे अनुसन्धान का सबसे रोमांचक हिस्सा है। सम्प्रेषण और संख्यात्मक संज्ञान वे बुनियादी कौशल हैं जो हम ज़िन्दगी की शुरुआत में ही सीख लेते हैं। लेकिन इनमें काफी पेचीदा तंत्रिका प्रक्रियाएँ शामिल होती हैं। इन प्रक्रियाओं का अध्ययन अपेक्षाकृत सरल जन्तुओं में करके हम ऐसी समझ हासिल कर सकते हैं जो सम्भवतः मानव संज्ञान पर भी लागू हो सके। यह जानना निहायत आकर्षक होता है कि कैसे संज्ञान के ये बुनियादी पहलू अलग-अलग प्रजातियों के बीच साझा भी होते हैं और भिन्न भी। यह दरअसल, किसी जटिल पहेली के टुकड़ों को जोड़ने जैसा है।

प्रश्न: आपके अनुभव के एक अन्य पहलू की बात करें, तो आपके यौन-रुझान या जेंडर पहचान ने स्टेम सम्बन्धी अनुसन्धान के प्रति आपके दृष्टिकोण और आपकी पेशेवर यात्रा को कैसे प्रभावित किया?

मैंने जब से खुद को क्वीअर व ट्रांस व्यक्ति के रूप में पहचाना, जो स्कूल के वर्षों के दौरान हुआ था, तब से मैं इसे लेकर काफी खुला रहा हूँ। खुले रूप में क्वीअर और ट्रांस होने का मतलब हुआ कि मुझे इस बात की समझ नहीं है कि मेरा करियर मार्ग इन पहचानों के बगैर कैसा होगा, क्योंकि मैंने कभी छिपी पहचान की कैद से भरा जीवन जीया ही नहीं। इसने विज्ञान व अकादमिक जगत में मेरी यात्रा को काफी प्रभावित किया है।

एक असर यह होता है कि 'ट्रांस व्यक्ति होने के नाते हम काफी जल्दी समझ जाते हैं कि मानक साहित्य अक्सर विभिन्न क्षेत्रों में आम सहमति को सरलीकृत करके पेश करता है या गलत प्रस्तुत करता है। ट्रांस समुदाय में

चल रहा विमर्श चिकित्सकीय या वैज्ञानिक आम सहमति से दशकों आगे हो सकता है, जिससे एक महत्वपूर्ण सबक मिलता है: पाठ्यपुस्तकें शाश्वत सत्य नहीं होतीं।' वे तो किसी क्षेत्र की मौजूदा आम सहमति का प्रतिबिम्ब होती हैं, और यह आम सहमति नए-नए अनुसन्धान के आधार पर लगातार विकसित होती रहती है।

केवल इसलिए कि कोई बात पाठ्यपुस्तक में है, यह सिद्ध नहीं हो जाता कि वह बात एक निर्विवाद सत्य है। उदाहरण के लिए, स्कूली पाठ्यपुस्तकों में समुचित सन्दर्भ या उद्धरण नहीं दिए जाते, जिसके चलते छात्र यह सोचने की गलती कर सकते हैं कि उन्होंने जो कुछ भी पढ़ा है, वह एकदम यकीनी है। वास्तव में, समस्त वैज्ञानिक जानकारी की आलोचनात्मक छानबीन होनी चाहिए, और छात्रों को सिखाया जाना चाहिए कि वे उसके स्रोतों पर सवाल उठाएँ, उनका सत्यापन करें।

उदाहरण के लिए, मनोविज्ञान को लें। यहाँ प्रगति इतनी रफ्तार से होती है कि आज प्रचलित पाठ्यपुस्तकें जल्दी ही बासी पड़ जाएँगी या शायद समस्यामूलक साबित हों। हमें काफी कम उम्र से ही बच्चों में इस बात का बीज बोना चाहिए कि आलोचनात्मक सोच ज़रूरी है। उन्हें पाठ्यपुस्तकों को पत्थर की लकीर के रूप में स्वीकार करवाने की बजाय प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे उन पर सवाल उठाएँ, उनकी छानबीन करें।

ट्रांस लोग होने के नाते, हम कई बार खुद को वैज्ञानिक साहित्य से आगे पाते हैं, जो हमें शंकालु और आलोचनात्मक विचारक बनने को मजबूर करता है। मुझे हार्वर्ड विश्वविद्यालय के मेरे प्राध्यापक याद हैं जिन्होंने हमें परिवर्धन का जीव विज्ञान पढ़ाया था, और उन्हें न तो ट्रांस जन्तुओं की कोई समझ थी और न ही इस बात की समझ थी कि इंटरसेक्स[2] होने का मतलब क्या होता है। ये विषय पाठ्यक्रम के हिस्से नहीं थे। लिहाज़ा, यदि आपने विशेष रूप से इंटरसेक्स भिन्नताओं पर शोध न किया हो, आप उनके बारे में सर्वथा अनभिज्ञ रहेंगे।

मसलन, एक नॉन-बाइनरी[3] ट्रांस व्यक्ति के रूप में मेरे सामने यह मुश्किल होती है कि हॉर्मोन-क्षतिपूर्ति उपचार की गैर-मानक व चिकित्सा की दृष्टि से कमतर खुराक के बारे में जानकारी कहाँ से पाऊँ। ऐसी खुराक जो

---

[2] *इंटरसेक्स का मतलब ऐसे जन्तुओं से होता है जो मानक नर या मादा की श्रेणी में फिट नहीं होते।*

[3] *नॉन-बाइनरी व्यक्ति का आशय उन लोगों से है जो अपनी जेंडर पहचान आदमी और औरत के आम द्वैत में नहीं करते।*

मानकीकृत चिकित्सा प्रक्रिया का हिस्सा नहीं है और इसलिए वैज्ञानिक शोध पत्रों में शामिल नहीं होती। कभी-कभी इसका अर्थ यह होता है कि निर्णय लेने के लिए मुझे आँकड़े भी स्वयं तैयार करने पड़ते हैं। इस अनुभव ने मौजूदा वैज्ञानिक आम सहमति को लेकर शंकालुपन के महत्व को पुख्ता किया है, और वास्तविक अनुभवों तथा उभरते अनुसन्धान के आधार पर ज्ञान पर सवाल उठाने तथा उसका अद्यतनीकरण करने की ज़रूरत को रेखांकित किया है।

प्रश्न: यह दूसरी बार है जब मैं किसी को यह कहते सुन रही हूँ कि विज्ञान ठोस नहीं होता। यह निरन्तर बदलता रहता है, और यह उतना वस्तुनिष्ठ नहीं होता, जितना कई लोग मानते हैं।

एकदम सही। विज्ञान की वस्तुनिष्ठता एकाधिक व्यक्तिनिष्ठ परिप्रेक्ष्यों को शामिल करने से बढ़ती है। उदाहरण के लिए, प्रकाश की तीव्रता को वस्तुनिष्ठ ढंग से नापने के लिए हम प्रकाश-मापियों का इस्तेमाल करते हैं क्योंकि हम प्रकाश की परम तीव्रता के आकलन में अपनी व्यक्तिनिष्ठता को जानते हैं। इसी प्रकार से, तंत्रिका विज्ञान और व्यवहार के सन्दर्भ में भी, अनुसन्धान पर व्यक्ति, जिसका अध्ययन किया जा रहा है, और शोधकर्ता, दोनों के नज़रियों का असर पड़ता है, और ये दोनों ही व्यक्तिनिष्ठ होते हैं।

इन क्षेत्रों के किसी भी अनुसन्धान में विशिष्ट व्यक्ति शामिल होते हैं जिनके अनुभव और सामाजिक परिवेश परिणामों को प्रभावित करते हैं। हम जिसे इन्सानों के बारे में तथ्य मानते हैं, वह समाज के विकास के साथ बदलेगा। तंत्रिका विज्ञान और व्यवहार के अधिकांश शोधकर्ता इस बात को समझते हैं, लेकिन इस समझ को हमारे शिक्षण में शुरू से ही शामिल करना निहायत ज़रूरी है।

आलोचनात्मक सोच प्रारम्भिक उम्र से ही शिक्षा का बुनियादी हिस्सा होनी चाहिए। यदि हम शिक्षा के अगले चरणों का इन्तज़ार करेंगे, जो कि अक्सर निजीकरण के चलते कई लोगों की पहुँच से बाहर होते हैं, तो हम भावी वैज्ञानिकों को तैयार करने का मौका गँवा देंगे। हमें एक वैज्ञानिक समाज, जहाँ आलोचनात्मक सोच को शुरुआत से ही प्रोत्साहित किया जाए, के निर्माण को सहारा देने के लिए अपनी शिक्षा प्रणाली पर पुनर्विचार करना होगा। इसमें यह सुनिश्चित करना होगा कि विज्ञान समावेशी हो और सबकी पहुँच में हो। राजनैतिक दृष्टि से, मैं कहना चाहता हूँ कि मेरी जाति-विरोधी और वर्ग-विरोधी सोच भी इस समझ से आकार लेती है कि ये ढाँचे विज्ञान के लिए भयानक हैं।

प्रश्न: मेरा अगला सवाल, एक गैर-बाइनरी ट्रांस व्यक्ति के नाते आपने स्टेम में कैसी चुनौतियों का सामना किया है, और आपने इनके बीच से कैसे रास्ता बनाया है?

मेरे क्षेत्र में, और मेरे अधिकांश अकादमिक परिवेशों में, अक्सर मैं अकेला ट्रांस व्यक्ति रहा हूँ। हालाँकि, आजकल कई सारे युवा ट्रांस शोधकर्ता हैं, और हमने इस क्षेत्र में आने वाले और भी व्यक्तियों को समर्थन देने के लिए एक मेंटरिंग नेटवर्क विकसित कर लिया है, लेकिन आज भी उनका प्रतिनिधित्व काफी सीमित है, खास तौर से मेरे उम्र समूह में। मैं इस देश में मात्र एक 'घोषित' ट्रांस अकादमिक को जानता हूँ जिनकी उम्र मुझसे ज़्यादा है।

विज्ञान में जेंडर सम्बन्धी विमर्श आम तौर पर विज्ञान में महिलाओं पर केन्द्रित रहता है। वैसे, भारत में पारम्परिक ट्रांस-फेमिनिन संस्कृतियों के संघर्षों द्वारा पनपी ऐतिहासिक दृश्यता के कारण, भारतीय नारीवादी आम तौर पर ट्रांस प्रतिनिधित्व को लेकर अन्य देशों के मुकाबले ज़्यादा ग्रहणशील हैं। फिर भी, संवाद को ऐसे स्तर पर आने में समय लगेगा जो ट्रांस पुरुषों, गैर-बाइनरी व्यक्तियों और इंटरसेक्स लोगों को विज्ञान के जेंडर सम्बन्धी व्यापक विमर्श में शामिल करेगा।

प्रश्न: क्या आपको कैंपस पर ऐसे संगठन या समर्थन समूह मिले हैं जो आपके शुरुआती दौर में मददगार रहे हों? आपने बताया था कि अपने क्षेत्र में आप पहले-पहले ट्रांसजेंडर व्यक्तियों में थे। अब जब आप अन्य लोगों के लिए मेंटरिंग की बात कर रहे हैं, तो आपके लिए किस तरह के समर्थन समूह या संगठन मौजूद थे, और आज आप क्या प्रदान कर रहे हैं? आपने किस तरह के अन्तर देखे हैं?

हार्वर्ड में, मैं एक मौजूदा ट्रांस-संगठन का हिस्सा था, जिसने काफी समर्थन दिया था। जब मैं भारत लौटा, तो यहाँ इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस (IISc) में पहले से एक क्वीअर समूह था लेकिन वह बहुत सक्रिय नहीं था। हम कुछ लोगों ने इसे फिर से शुरू किया, और मैं उसके इतिहास में पहला खुले तौर पर ट्रांस व्यक्ति था। यह समूह, जिसका नाम अब क्वासी (QUASI) है, आज भी अस्तित्व में है।

हैदराबाद विश्वविद्यालय में, एक बार फिर, मैं कैंपस में पहला घोषित ट्रांस व्यक्ति था, लेकिन एक फैकल्टी फेलो के रूप में। मैंने भावी ट्रांस विद्यार्थियों के लिए एक छात्र प्रकोष्ठ बनाने में मदद की थी। अब जब ट्रांस विद्यार्थी विश्वविद्यालय में आए हैं, तो वे इसके ढाँचे को बेहतर बनाते हुए आगे ले जा रहे हैं। अशोका विश्वविद्यालय के कैंपस में, जहाँ तक मुझे जानकारी है, मैं पहला ट्रांस व्यक्ति था। आज वहाँ लगभग 70 ट्रांस व्यक्ति हैं, जो एक बड़े, फलते-फूलते समुदाय की रचना कर रहे हैं।

प्रश्न: आपकी पहचान ने आपके व्यावसायिक, अकादमिक, या सामाजिक अनुभवों को किस तरह प्रभावित किया है? आप जो हैं, उसके साथ आप काफी सहज लगते हैं, और ऐसा लगता नहीं कि आपको अपनी ट्रांस पहचान की चर्चा करने में कभी कोई डर लगा हो।

मुझे यकीन है कि मेरी पहचान का असर हुआ है, लेकिन जैसा कि आपने कहा, मैं इसके बारे ज़्यादा नहीं सोचता। मैं ऐसे लोगों से निपटने को ज़्यादा तरजीह नहीं देता जिन्हें इसके (मेरी पहचान के) प्रति कोई शिकवा हो। बल्कि मैं उन पर ध्यान ही नहीं देता। कुछ लोग सोचते हैं कि यदि उनकी पहचान उजागर न होती, तो वे कहाँ होते। लेकिन इसमें मेरी दिलचस्पी नहीं है। मैं रूढ़िगत क्षमता-प्रधान अर्थ में महत्वाकांक्षी नहीं हूँ, और मुझे वैज्ञानिक जगत में हैसियत या प्रतिष्ठा की ज़्यादा परवाह नहीं है। वह मुझे खोटी लगती है।

विज्ञान सबकी पहुँच में होना चाहिए, और हमें ऐसे सभी अवरोधों को ढहा देना चाहिए जो भागीदारी को सीमित करते हैं। यदि हम इन कृत्रिम श्रेणियों

को मज़बूत करते रहे, तो वैज्ञानिक समाज की अवधारणा कभी एक हकीकत नहीं बन पाएगी।

हाँ, मैंने सूक्ष्म-आक्रामकता, रूखेपन, और वैमनस्य का सामना किया है। कभी-कभी अधोसंरचना का अभाव होता है, जैसे मेरे जैसे व्यक्ति के लिए वॉशरूम न होना, या लोग सिर्फ ऐसी किसी चीज़ से डरे होते हैं जिसे वे समझते नहीं। लेकिन मैं अपनी अपेक्षाओं को सम्मानजनक व्यवहार के आधार पर निर्धारित करता हूँ, और ज़्यादातर लोग उन पर खरे उतरते हैं। जो खरे नहीं उतरते, मैं उन पर समय बरबाद नहीं करता।

मैं बचपन से ही खुले रूप में ट्रांस रहा हूँ, इसलिए मैंने इसके नफा-नुकसान को तौलने में ज़्यादा समय नहीं लगाया है। अन्य लोगों की राय की चिन्ता न करते हुए, जो हूँ वह बने रहने में एक सरलता है जोकि एक बड़ी राहत है।

प्रश्न: जब आपने स्टेम क्षेत्र में प्रवेश किया था, तब क्या आपको कोई अनुकरणीय व्यक्ति (रोल मॉडल) या मेंटर मिले थे?

जी हाँ, ज़रूर मिले। यह समझ पाना कि ट्रांस होने का मतलब क्या होता है और अपने जैसे अन्य लोग मिलना बहुत मददगार रहा। अपने विकास के दौरान, मैंने मान लिया था कि मेरे जैसे बहुत लोग नहीं हैं, और इसमें कोई दिक्कत नहीं थी। लेकिन जब मैंने देखा कि स्टेम में अन्य ट्रांस लोग हैं, तो इसने मुझे अपनेपन का एक एहसास दिया और एक मकसद दिया।

मसलन, स्टैनफर्ड विश्वविद्यालय में स्नातक शिक्षा के दौरान, मुझे बेन बैरेस जैसे ट्रांस फैकल्टी सदस्यों के बारे में पता चला। वे एक तंत्रिका वैज्ञानिक थे और स्टेम में जेंडर समानता के प्रबल हिमायती रहे। वे स्टेम में ही सिस[4] महिलाओं के सशक्त साथी भी थे। फिर जोन रफगार्डन थीं। वे एक वैकासिक जीव विज्ञानी हैं और उन्होंने *एवोल्यूशंस रेनबो* लिखी है। यह अद्‌भुत किताब विभिन्न प्रजातियों में लिंग व जेंडर के जीव वैज्ञानिक व सामाजिक पहलुओं की पड़ताल करती है। इसे पढ़ना आँखें खोल देता है, और मैं सबके लिए इसकी ज़ोरदार सिफारिश करूँगा।

स्टैनफर्ड इंटरव्यू के दौरान जोन से मुलाकात महत्वपूर्ण थी, हालाँकि उन्हें शायद इसकी याद नहीं होगी क्योंकि मैं कई सारे पीएच.डी. उम्मीदवारों में से एक था। बदकिस्मती से बेन बैरेस से मेरी मुलाकात कभी नहीं हुई जिसका मुझे हमेशा मलाल रहेगा। बहरहाल, यह जानना ही काफी

[4] *सिस दरअसल सिसजेंडर का संक्षिप्त रूप है। सिसजेंडर वे व्यक्ति होते हैं जिनकी जेंडर पहचान जन्म के समय निर्धारित लिंग से मेल खाती है।*

उत्साहवर्धक था कि बेन और जोन जैसे ट्रांस वैज्ञानिक मौजूद हैं। इसने मुझे दिखाया कि विज्ञान में ट्रांस व्यक्तियों के लिए जगह है, जिसने मेरे सफर में उल्लेखनीय फर्क पैदा किया।

प्रश्न: कैंपस पर सिसजेंडर पेशेवरों को आप क्या सलाह देंगे ताकि उन्हें LGBTQIA+ समुदाय के बेहतर मित्र होने में मदद मिले?

मेरी पहली सलाह एकदम सरल है: 'जब आप किसी ट्रांस सहकर्मी से मिलें, तो उनकी पहचान को लेकर फुसफुसाएँ नहीं और न ही कोई अटकल लगाएँ। बस, खुद का परिचय दें, उनके द्वारा चुने गए नाम और सर्वनाम पूछें, और उनका इस्तेमाल करें।' उनके द्वारा स्वयं के लिए चुने गए नाम और सर्वनाम का सम्मान करना हमकदम होने की दिशा में पहला कदम होता है।

कुछ लोग इससे जूझ सकते हैं क्योंकि इसके लिए एक संज्ञानात्मक बदलाव की ज़रूरत होती है। अलबत्ता, अकादमिक व्यक्तियों के तौर पर ज़रूरत है कि हममें लचीलापन हो और हम अपनी सोच में त्वरित बदलाव के साथ सहज हों। हमारा सामना लगातार नई जानकारी से होता है, इसलिए इस लचीलेपन का उपयोग जेंडर पहचान को समझने व उसका सम्मान करने में कर पाना हमारे पेशेवर व्यवहार का अंग होना चाहिए।

एक और महत्वपूर्ण पक्ष यह सुनिश्चित करना है कि ट्रांस लोगों को उनकी ज़रूरतों की पूर्ति हेतु बुनियादी अधोसंरचना मिले। इसमें जेंडर-निष्पक्ष बाथरूम या सिंगल-स्टॉल बाथरूम (एक बार में एक व्यक्ति के लिए) हों जिनका उपयोग सब लोग कर सकें। यह आसान-सा परिवर्तन जगहों को सभी जेंडर की पहुँच में लाने की दिशा में महत्वपूर्ण हो सकता है।

इसके अलावा, नौकरी या दाखिले के लिए आवेदनों का आकलन करते वक्त यह ध्यान रखें कि ट्रांस आवेदनकर्ताओं के आवेदनों में भिन्न-भिन्न नाम या जेंडर हो सकते हैं। यह समझना होगा कि ये विसंगतियाँ कोई धोखाधड़ी नहीं बल्कि उनकी पहचान का हिस्सा हैं। यह सुनिश्चित करना होगा कि ऐसे आवेदन लिपिकीय जाँच में स्वतः खारिज न हो जाएँ।

कुल मिलाकर, सम्मान, लचीलापन और समावेशी अधोसंरचना प्रमुख हैं। इन बातों को शामिल करके हम कैंपस में LGBTQIA+ समुदाय के लिए ज़्यादा उत्साहवर्धक और समर्थक माहौल बना सकेंगे।

प्रश्न: क्या आप एक कामकाजी ट्रांसजेंडर अभिभावक के रूप में अपने अनुभव साझा करना चाहेंगे?

एक कामकाजी ट्रांस अभिभावक होने में काफी मशक्कत करनी होती है, क्योंकि हमें वैसा समर्थक ढाँचा उपलब्ध नहीं होता जो सिसजेंडर अभिभावकों को मिलता है। मेरे बच्चे के स्कूल के शिक्षक और अन्य अभिभावक अक्सर यह नहीं जानते कि अभिभावकों के रूप में हमारे बारे में क्या सोचें। इसकी वजह से हमें कई मर्तबा मिस-जेंडर्ड[5] किया जाता है।

इसके अलावा, बहुत ही कम कार्यस्थलों पर जेंडर-निरपेक्ष अभिभावकीय अवकाश की व्यवस्था होती है। उदाहरण के लिए, मेरा कार्यस्थल तो यह सुविधा देता है लेकिन कई ऐसा नहीं करते। और ऐसा तो बहुत कम कार्यस्थलों पर होता है कि क्वीअर अभिभावकों को बच्चों की देखभाल में मदद के लिए समय दिया जाए। मेरे पार्टनर की यही स्थिति है।

शिशु पालन को लेकर अधिकांश समर्थन योजनाएँ सिसजेंडर महिलाओं को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं। इनमें ट्रांसजेंडर अभिभावकों को शामिल नहीं किया जाता। इन कार्यक्रमों को सिर्फ महिलाओं के लिए नहीं बल्कि जेंडर-समावेशी कार्यक्रमों के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए। यह स्वीकार करना ज़रूरी है कि 'महिला' शब्द से तात्पर्य प्रायः सिसजेंडर और बाइनरी पहचानों का होता है। उम्मीद है कि इन मुद्दों को रेखांकित करके हम बातचीत में बदलाव ला सकेंगे और ज़रूरी परिवर्तन करवा सकेंगे।

[5] *गलत जेंडर थोपा जाना।*

विविधता, समता, समावेशन और भारत में विज्ञान तक पहुँच को लेकर बिट्टू की लालसाएँ

बुनियादी ढाँचे के प्रोटोकॉल

- यह सुनिश्चित करना कि नौकरी के आवेदन सम्बन्धी पोर्टल यह मानकर न चलें कि प्रस्तुत प्रमाण पत्रों में सारे नाम और जेंडर चिन्ह परस्पर मेल खाएँगे।
- स्क्रीनिंग समितियों को यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि नाम और जेंडर चिन्ह सुसंगत होंगे क्योंकि ट्रांस व्यक्ति के सफर में बदलाव सम्भव हैं।

प्रवेश की कसौटियाँ

- संस्थाओं में प्रवेश की कसौटियों में समायोजन किया जाए ताकि ट्रांस व्यक्तियों के बदलते दस्तावेज़ों को मान्य किया जा सके।

अधोसंरचना की ज़रूरतें

- कैंपस की हर इमारत में जेंडर-निरपेक्ष वॉशरूम की व्यवस्था।
- विकल्प के तौर पर ऐसे सिंगल-स्टॉल वॉशरूम उपलब्ध कराए जाएँ जिनका उपयोग सब लोग कर सकें, क्योंकि बनावट की दृष्टि से ये आसान होते हैं।
- यह सुनिश्चित करना कि ट्रांस-समर्थक आवास उपलब्ध हों।

कामकाजी समावेशन

- लोगों को संस्था में अपने चुने हुए नाम और जेंडर के साथ काम करने देना, चाहे उनके आधिकारिक दस्तावेज़ कुछ भी कहते हों।
- ऐसी संस्थागत ईमेल आईडी चुनने की स्वतंत्रता देना जो व्यक्ति को आवंटित नाम की बजाय अपने द्वारा चुने गए नाम को प्रतिबिम्बित करे।
- कोर्स प्रशासन व हाज़िरी पत्रकों का तालमेल पसन्दीदा नाम व जेंडर के साथ सुनिश्चित करना।

समर्थक उपाय

- संवेदीकरण कार्यक्रम चलाना तथा भेदभाव-विरोधी प्रकोष्ठ स्थापित करना।
- क्वीअर सम्बन्धों, साझेदारियों व अभिभावकत्व को संस्थागत नीतियों में मान्यता देना व शामिल करना।

व्यापक मुद्दों के प्रति

- भारत में जारी जातिगत आफत, जो वर्ग और भाषा के मुद्दों के साथ घुल-मिलकर चलती है, से संघर्ष करना। खास तौर से इसलिए कि अँग्रेज़ी विज्ञान शिक्षा की प्रमुख भाषा है।
- जिस ढंग से विज्ञान पढ़ाया और किया जाता है, उसमें परिवर्तन करना ताकि ब्राह्मणवादी तौर-तरीकों से दूर जा सकें। विज्ञान को चन्द सूत्रों, जिन्हें याद करना है, के रूप में देखने की बजाय आलोचनात्मक सोच, समस्या-समाधान और वैज्ञानिक प्रक्रियाओं में निहित तर्क को समझने को बढ़ावा देना।

प्रश्न: अपने वैज्ञानिक करीयर में आपके दूरगामी लक्ष्य क्या हैं? आपके क्षेत्र की तरक्की में आपके काम के योगदान को आप किस तरह देखते हैं?

मैं अपने वैज्ञानिक करीयर में दूरगामी लक्ष्यों के बारे में सोचने का आदी नहीं हूँ। यह मेरी खुशकिस्मती है कि मैं विज्ञान में काम कर रहा हूँ और ऐसे सवालों पर काम कर रहा हूँ जो मेरी रुचि के हैं। उम्मीद है कि मध्यम से लम्बे समय में हम ऐसा काम कर पाएँगे जो हमें यह समझने में मदद करेगा कि बुनियादी तौर पर मस्तिष्क सम्प्रेषण और मात्रात्मक व गणितीय संज्ञान कैसे उत्पन्न करता है। शिक्षा और स्वास्थ्य में हमारे हस्तक्षेपों के सन्दर्भ में इसके विशिष्ट अनुप्रयोग हैं। इसके अलावा, यह इस सन्दर्भ में भी उपयोगी है कि हम जलवायु परिवर्तन से कैसे निपटें क्योंकि जिस तरह का संवाद कार्य हम करते हैं, उसका अनुप्रयोग जैव-विविधता की निगरानी में भी है।

ध्रुवी निर्मल: मुम्बई के इंस्टिट्यूट ऑफ केमिकल टेक्नोलॉजी में एक पीएच.डी. विद्यार्थी हैं। डीबीटी जूनियर रिसर्च फेलोशिप पाने वाली ध्रुवी जीव विज्ञान में अकादमिक और प्रचार सम्बन्धी पहलें करने को लेकर समर्पित हैं।

बिट्टू के. राजारमन: अशोका विश्वविद्यालय में जीव विज्ञान के सहायक प्रोफेसर हैं। वे सम्प्रेषण की तंत्रिका व व्यवहार प्रणालियों के क्रमविकास जैसे विषयों पर काम करते हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी चित्र: हरमन: चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहते हैं।

यह लेख मूलतः अँग्रेज़ी में *विविध: डायवर्सिटी, इक्विटी, इंक्लूज़िविटी एंड एक्सेसिबिलिटी इन साइंस इन इंडिया* में प्रकाशित हुआ था जोकि IndiaBioScience.org द्वारा किया गया एक संग्रह है। फिर कुछ छिट-पुट सम्पादन के साथ इसे सन् 2024 में thelifeofscience.org पर प्रकाशित किया गया। प्रस्तुत लेख उसका अनुवादित व पुनः छिट-पुट सम्पादित रूप है।

शिक्षा की अलख जगाती गोनिया बाई

प्रियंका कुमारी

विद्यालय के कुछ बच्चों के साथ गोनिया बाई

हम शिक्षक अक्सर कहते हैं कि बच्चों की शिक्षा में अभिभावकों की सहभागिता बहुत महत्वपूर्ण होती है। हम तो यह भी कहते हैं कि माता-पिता या अभिभावक किसी भी बच्चे के प्रथम शिक्षक होते हैं। ऐसे में उनकी महत्ता को नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। एनसीएफ 2005 और हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बच्चों की शिक्षा में अभिभावकों की सहभागिता पर विशेष ध्यान आकृष्ट किया गया है। राज्य में तैयार की गई शिक्षक सन्दर्शिका में भी शिक्षा में अभिभावकों की सहभागिता सुनिश्चित करवाने के लिए कई गतिविधियाँ एवं दिशा-निर्देश सुझाए गए हैं।

इन्हीं सब बातों से प्रेरित होकर शिक्षक-अभिभावक संगोष्ठी (अगस्त 2023) के दौरान मैंने बच्चों के साथ-साथ एक महिला अभिभावक को भी उनके शैक्षिक प्रयासों के लिए सम्मानित किया। गोष्ठी में सम्मिलित

अन्य महिलाएँ खुसर-पुसर करने लगीं कि आखिर मैडमजी ने इन्हें उपहार देकर क्यों सम्मानित किया। चूँकि आज तक विद्यालय द्वारा किसी भी अभिभावक को सम्मानित नहीं किया गया था, ऐसे में यह जिज्ञासा स्वाभाविक थी।

हमारे गाँव मलहाटोल में ज़्यादातर मल्लाह और दुसाध के अलावा कुछ मुस्लिम परिवार रहते हैं। कुछ घर धोबी, बनिया, लोहार आदि के भी हैं। गाँववालों की जीविका के प्रमुख साधन खेती-बाड़ी, मछली पकड़ना, दिहाड़ी मज़दूरी और अन्य इलाकों में जाकर काम करना है। गाँव की ज़्यादातर महिलाओं ने पाँचवीं कक्षा तक या इससे भी कम स्कूली शिक्षा प्राप्त की है। इन सब वजहों से मैं काफी प्रयासों के बाद शिक्षक-अभिभावक संगोष्ठी में महिला अभिभावकों की उपस्थिति को सुनिश्चित करवा पाई थी। ऐसे में मेरे लिए यह एक सुनहरा अवसर था कि मैं महिला अभिभावकों को बच्चों की शिक्षा का हिस्सा बना सकूँ। मैंने सभी अभिभावकों के बीच उस महिला अभिभावक का उदाहरण रखा जिन्हें मैंने सम्मानित किया था और साथ ही, उनके प्रयासों से सबको अवगत कराया। तो आइए जानते हैं इस शिक्षादूत की कहानी, जो स्वयं तो निरक्षर हैं लेकिन बच्चों की शिक्षा के प्रति अत्यन्त जागरूक और संवेदनशील हैं।

गोनिया की बेचैनी

इनका नाम गोनिया बाई है। उम्र लगभग 60-65 वर्ष के आसपास होगी। पहली नज़र में कोई भी यही कहेगा कि ये स्वभाव से बहुत गुस्सैल और मुँहफट हैं, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। लोगों ने उन्हें आज तक सिर्फ ऐसी आक्रोशित महिला के रूप में देखा है जिन्हें पढ़ाई के वक्त बच्चे का विद्यालय छोड़कर इधर-उधर भटकना, या फिर शिक्षकों का बच्चों पर ध्यान न देना बिलकुल बर्दाश्त नहीं होता। वे विद्यालय के पास वाली सड़क से ही गुस्साना शुरू कर देती हैं जो विद्यालय के कक्षा-कक्ष तक जारी रहता है। अपनी बातों से वे बच्चों, अभिभावकों और कभी-कभी तो शिक्षकों तक को अच्छे से लताड़ देती हैं। कुछ लोग उनके इस स्वभाव को बहुत पसन्द करते हैं तो कुछ को किसी दूसरे का अपने बच्चे पर चिल्लाना बिलकुल पसन्द नहीं आता।

गोनिया का यह स्वभाव मुझे बेहद पसन्द था। हाँ, यह बात अलग थी कि विद्यालय की प्रभारी प्रधानाध्यापिका को उनकी टोका-टोकी नागवार गुज़रती। एक बार विद्यालय में आए एक निरीक्षणकर्ता के समक्ष गोनिया बाई ने अपने कुछ सुझाव प्रस्तुत कर दिए तो विद्यालय प्रधान ने उन्हें स्कूल टाइमिंग में न आने की नसीहत दे डाली थी। विद्यालय के अन्य शिक्षकों को भी गोनिया बाई की बातें पसन्द थीं क्योंकि हम सबका मानना

था कि इस अत्यन्त मुश्किल परिवेश में जहाँ की अधिकांश आबादी सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ी अवस्था में है, कोई तो ऐसा है जिसके अन्दर बच्चों की शिक्षा को लेकर छटपटाहट और बेचैनी है।

कई लोगों के मन में अक्सर यह सवाल उठता था कि आखिर इस महिला के अन्दर बच्चों की शिक्षा को लेकर इतनी अधिक बेचैनी क्यों है। गोनिया बाई खुद तो निरक्षर थीं लेकिन वे साक्षर होने का महत्व बखूबी समझती थीं। शायद इसीलिए उनके अन्दर शैक्षिक गैरज़िम्मेदारी के प्रति आक्रोश और शिक्षा के प्रति जागरूकता थी।

पारिवारिक पृष्ठभूमि

गोनिया बाई से बातचीत के दौरान मुझे पता चला कि उनके दादा-दादी जेल में काम करने वाले सिपाहियों के घरों में खाना बनाने और उनके बच्चों की तेल मालिश का काम किया करते थे। उनके माता-पिता खेती-गृहस्थी का कार्य करते थे। कई सन्तानों की मृत्यु के पश्चात् गोनिया के माता-पिता को तीन सन्तानें हुईं जिनमें गोनिया दूसरे नम्बर पर थीं। गोनिया के चाचा उनके पिता को बच्चों के सम्बन्ध में अक्सर ताने दिया करते थे। भाई के तानों से रोष में आकर गोनिया के पिता अपनी जगह-ज़मीन बेचकर, शहर से दूर, एक गाँव में जा बसे जहाँ उनकी जाति (अनुसूचित जाति) के अधिकांश लोग रहते थे।

अपने पोते-पोतियों की पढ़ाई में मदद करती गोनिया बाई

पुराने समय की सोच और पारिवारिक परिस्थितियों के चलते गोनिया और अन्य भाई-बहन कभी स्कूल का मुँह नहीं देख पाए। गोनिया थोड़ी बड़ी हुईं तो माता-पिता ने पड़ोस के ही गाँव में उन्हें ब्याह दिया। गोनिया खुश थीं कि उनका पति बहुत पढ़ा-लिखा है, पूरी पाँचवीं पास। लेकिन गोनिया बाई की खुशी ज़्यादा दिन तक नहीं टिकी रह पाई। पति कमाने के लिए परदेश चले गए और वे गाँव में ही सास-ससुर के पास रह गईं। बचपन से ही वे बोलने में बहुत मुँहफट थीं और सामने वाले के मुँह पर जायज़-नाजायज़ बातें, बेहिचक बोल दिया करती थीं। इसके परिणाम स्वरूप ससुराल वालों से उनके सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे। पति पैसे कमाकर अपने माता-पिता के पास भेज दिया करते थे जिसमें से गोनिया बाई को कुछ नहीं मिलता था। एक बार पति ने परदेश जाते समय उन्हें 60 रुपए दिए थे जिसे उन्होंने भूसे में छुपाकर रखा था, इन्हें भी ढूँढकर छीन लिया गया।

गोनिया बाई स्वाभिमानी महिला थीं। हज़ार दुख सहकर भी वे अपने माता-पिता के पास नहीं गईं जो ससुराल से मात्र एक किलोमीटर की दूरी पर ही रहते थे। उन्होंने खेतों पर जाकर मज़दूरी करना शुरू की लेकिन किसी के सामने सहायता के लिए हाथ नहीं पसारे। एक बार गोनिया बाई के पति ने उनकी पिटाई कर दी, लेकिन हर बार की तरह इस बार उन्होंने बर्दाश्त नहीं किया और पुलिस में रिपोर्ट लिखवा दी। बाद में, गोनिया बाई ने अगली बार से मारपीट न करने का वादा लेकर पति को जेल जाने से बचा लिया।

जीवन के इन्हीं उतार-चढ़ाव के बीच वे छह बच्चों की माँ भी बन गई थीं। पति अक्सर ही बाहर रहते थे। इसलिए बच्चों की ज़िम्मेदारी भी गोनिया बाई ने बखूबी निभाई। गरीबी में भी उन्होंने ईमानदारी से अपने जीवन का निर्वाह किया। वे कभी किसी के खेत से तो कभी कहीं और से मालिक के मुँह पर बोलकर, ढिठाई से कोई भी सामान ले जातीं, बिना किसी की सहमति का इन्तज़ार किए – लेकिन कभी चोरी नहीं करतीं।

अनुभवों से समझा शिक्षा का महत्व

उन्होंने अपने सभी बच्चों को पढ़ाया-लिखाया। बेटा-बेटी की शिक्षा में अन्तर नहीं किया। खुद स्कूल न जा पाने के बावजूद उन्होंने अपने अनुभवों से समझ लिया था कि स्वाभिमानी जीवन के लिए शिक्षा का क्या महत्व है। खुद के बच्चों की शिक्षा के प्रति चिन्तित होने के साथ-साथ वे गाँव के अन्य बच्चों की शिक्षा के प्रति भी अत्यन्त जागरूक हैं। तभी तो वे विद्यालय अवधि में किसी भी बच्चे को बाहर खेलता देख खूब आक्रोशित हो जातीं और बच्चे के

लेखिका प्रियंका स्कूल के बच्चों की मौजूदगी में गोनिया बाई से बातचीत करती हुईं

अभिभावकों को भी लताड़ देती हैं।

जब मैंने पूछा कि उनके भीतर इतना आक्रोश क्यों है तो उनका कहना था कि "बच्चे जब अच्छे से पढ़ेंगे तभी तो वे जीवन में कुछ बेहतर कर पाएँगे। यदि कुछ बेहतर नहीं भी कर सके तो कम-से-कम उन्हें जीवन जीने का सही ढंग तो पता होगा।" इतनी बातें कहकर उनकी आँखें नम हो गईं।

आज उनकी दो बहुएँ हैं और उन दोनों से भी उनकी नहीं बनती। फिर भी वे सुबह उठते ही अपने पोते-पोतियों पर समय से स्कूल जाने और पढ़ने के लिए दबाव बनाने लगतीं। यदि बहुएँ ज़्यादा दिन के लिए मायके जातीं तो वे उनसे बोलतीं कि "तुम्हें जहाँ जाना है जाओ, लेकिन बच्चों को यहीं छोड़कर जाना ताकि बच्चों की इतने दिन तक पढ़ाई न छूटे।"

कभी-कभी वे विद्यालय में आकर कक्षा के दौरान बच्चों को छुट्टी देने का अनुरोध करती भी दिख जाती हैं क्योंकि समय पर स्कूल भेजने के चक्कर में बच्चों को खाली पेट ही भेज दिया गया था। लेकिन ऐसा बहुत कम ही होता है।

गोनिया बाई की सबसे बड़ी खासियत यह है कि उन्होंने विद्यालय में उपस्थित होने के लिए जितना अपने बच्चों को डाँटा है, उतना ही अपने पोते-पोतियों व समाज के अन्य बच्चों को भी। उनका मानना है कि बच्चा सिर्फ माता-पिता का नहीं होता

बल्कि पूरे समाज का होता है। इसलिए हर बच्चे को पढ़ाई के समय विद्यालय में मौजूद होना चाहिए और हर शिक्षक को बच्चों के प्रति ईमानदार रहना चाहिए। इतनी ही मुखरता से वे आज भी अपनी बात सबके सामने रखती हैं।

एक बार विद्यालय की एक शिक्षिका ने उन्हें अपना नाम लिखना सिखाने की कोशिश की तो वे हँसकर बोलीं, "अब इस उम्र में मैं अपना नाम लिखना सीखकर क्या करूँगी?" फिर भी शिक्षिका के अनुरोध पर उन्होंने मुस्कुराते हुए अपना नाम लिखना शुरू किया।

***

सच कहें तो वर्तमान समय में शालाओं को गोनिया बाई जैसे लोगों की नितान्त आवश्यकता है। आज जहाँ लोग सिर्फ अपना नाम, अपनी पहचान और अपने बच्चों तक ही अपनी ज़िम्मेदारी को सीमित रख रहे हैं, ऐसे माहौल में गोनिया बाई की मानसिकता अभूतपूर्व है।

प्रियंका कुमारी: पेशे से शिक्षिका, स्वभाव से सामाजिक कार्यकर्ता और हृदय से लेखक हैं। पिछले 14 वर्षों से प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षण कार्य। वर्तमान में, मध्य विद्यालय मलहाटोल, सीतामढ़ी, बिहार में सहायक शिक्षिका हैं। कई काव्य रचनाएँ प्रकाशित। महिला साक्षरता, महिलाओं के डिजिटल सशक्तिकरण और ज़रूरतमन्द बच्चों की शिक्षा के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करने व बच्चों से मित्रता करने में विशेष रुचि।

सभी फोटो: प्रियंका कुमारी।

कहानियाँ
बच्चों के अन्तर्मन तक पहुँचने का ज़रिया

वरुण गुप्ता

चित्र: 'माछेर झोल' किताब से साभार

क्या कहानियों के रास्ते हम हर एक बच्चे के अन्तर्मन तक पहुँच सकते हैं? मेरा मानना है – हाँ, ज़रूर पहुँच सकते हैं। बस, कहानियाँ विविध हों और समाज व जीवन के हर पहलू को छूने का प्रयास करती हों। प्रचलित व सुखद अन्त वाली कहानियाँ तो बहुतेरी इस्तेमाल होती हैं और पढ़ी-लिखी व पसन्द की जाती हैं लेकिन भीड़ से अलग, पारिवारिक या सामाजिक भेदभाव से पीड़ित लोगों पर, यहाँ तक कि कुछ अलग आदतों पर, पसन्द-नापसन्द पर लाइब्रेरी-स्कूलों में कम ही बातचीत होती है। इन मुद्दों पर साहित्य भी भींचा-भींचा-सा ही लगता है।

ऐसा ही एक विषय है – मृत्यु! घर-परिवार, अपने आसपास और समाचारों में 'मृत्यु' को देखने-सुनने व अनुभव करने के बावजूद जीवन के इस अटूट सत्य पर बच्चों से बातचीत कर पाना बहुत ही जटिल लगता है। पाठ्यपुस्तकों और ज़्यादातर बाल साहित्य में मृत्यु के मुद्दे पर खामोशी बरती जाती है। घर में भी बच्चों द्वारा मौत को लेकर पूछे जाने वाले सवालों को या तो टाल दिया जाता है या जवाब देने से बचने की कोशिश की जाती है। इसलिए किसी भी शिक्षक के लिए इस मुद्दे पर बात करना एक चुनौती हो जाती है।

तीक्ष्ण प्रश्नों का सामना

"तुम अब रोती क्यों नहीं हो?"

"क्या अब तुम्हें अपने पापा याद नहीं आते?"

9-10 साल के कुछ बच्चों ने कक्षा-4 की एक लड़की से ये सवाल पूछे। लगभग पाँच साल पहले उस लड़की ने कोविड महामारी में अपने पिता को खो दिया था। तब से लेकर आज तक उसकी माँ ने विषम परिस्थितियों में उस छोटी लड़की और खुद को कितनी बार टूटने से बचाया। एक स्कूल के परिप्रेक्ष्य में उस माँ का निश्चिन्त हो जाना स्वाभाविक है कि कम-से-कम उसका बच्चा वहाँ सुरक्षित है, भावनात्मक रूप से महफूज़ है और उसे अन्य साथी व दोस्तों के संग कुछ कोमल, अच्छे-मीठे पल मिलेंगे। लेकिन कितना दुख व त्रासदी महसूस होती है जब छोटे बच्चों को ऐसे तीक्ष्ण प्रश्नों का सामना करना पड़ता है।

बच्ची की माँ ने जब भरे दिल से, काँपती आवाज़ और थरथराते लहज़े में हम शिक्षकों के साथ यह साझा किया तो दिल धक्-सा रह गया। हम शिक्षकों को इस स्थिति की गहराई को समझने में कुछ क्षण लगे। उस माँ की डबडबाती आँखों के भाव को हम महसूस कर पा रहे थे। मन में एक इरादा बना कि जल्द ही इस मुद्दे पर काम करने के लिए हमें तैयार होना है। मैंने उनको आश्वासन दिया कि हम यकीनन इस विषय पर बच्चों से कुछ बातचीत करने की कोशिश करेंगे। एक शिक्षक के तौर पर सन्दर्भ की व्यापकता से यह समझ आ रहा था कि न केवल उस बच्ची को बल्कि सभी बच्चों को भावनात्मक रूप से मदद मिलनी चाहिए।

बालमन को सँभालना

मेरे साथी शिक्षकों ने भी इस बात की गम्भीरता को समझा और विचार किया कि बालमन की संवेदनशीलता को कैसे सींचा जाए। आपसी समझ और सहयोग से हम तीन शिक्षकों ने इसकी शुरुआत की। मैं हिन्दी भाषा का अध्यापक हूँ और मेरी साथी शिक्षिका, माधुरी शर्मा अँग्रेज़ी भाषा पढ़ाती हैं। हम सामाजिक व भावनात्मक विषयों पर बच्चों के साथ सप्ताह में दो सत्र लेते हैं। हमारी तीसरी सहयोगी एक प्रशिक्षणकर्ता हैं, जो इस साल हम दोनों के साथ सत्र लेने में मदद कर रही हैं। मेरा यह पक्का मानना है कि शिक्षक एक-दूसरे के लिए महत्वपूर्ण संसाधन और ज़रूरी सहारा होते हैं। आज के समय में जब सामाजिक व आर्थिक परिवेश बहुत तेज़ी-से बदल रहा है, और बदल रही है विद्यालय और शिक्षक की प्रासंगिकता, अभिभावक व स्कूल के सम्बन्ध व अपेक्षाएँ, ऐसे में शिक्षकों की कम्युनिटी एक-दूसरे के लिए सबसे बड़ी हिम्मत है।

सभी की सहमति थी कि बच्चों से बात शुरू करने के लिए कहानी की मदद ली जानी चाहिए। बच्चों की उम्र व स्थिति के अनुसार मैंने *मेरी ज़ोया*

चित्र: 'मेरी ज़ोया चली गई' किताब से साभार

चली गई किताब का सुझाव दिया। यह एक संजीदा कहानी है जो दो बहनों के आपसी प्यार और फिर एक बहन की मृत्यु हो जाने पर दूसरी बहन की ज़िन्दगी पर उसका क्या असर होता है, इसके बारे में है। दूसरी बहन की नाज़ुक स्थिति, लोगों के कटाक्ष, भावनाओं के समुद्र में उथल-पुथल, बहन की दोस्त के साथ खेलने में उहापोह और फिर उसे खुले दिल से अपनाने में संघर्ष। इस कहानी को चुनने का पहला कारण था कि कहानी में मुख्य पात्र दो लड़कियाँ हैं और दूसरा यह कि इस कहानी में भी कुछ ऐसे शब्द और वाक्य इस्तेमाल किए गए हैं जो प्रश्नों को तीक्ष्ण बनाते हैं। मुझे यह भी महसूस हुआ कि कहानी के साथ-साथ बच्चों के सामने उन परिस्थितियों को दर्शाने वाले किसी नाटक का भी इस्तेमाल करना चाहिए। यहाँ पर मैं जोड़ना चाहता हूँ कि अभिनय करने में मैं कभी भी खुद को सहज नहीं पाता हूँ इसलिए जब बाकी दोनों साथियों ने अभिनय करने का ज़िम्मा सँभाला तो मैंने राहत की साँस ली। एक समूह में एक-दूसरे की ताकतों को साथ लेकर आगे बढ़ने का यह एक अच्छा उदाहरण था।

बच्चों की जिज्ञासाएँ

संजीदगी और सहजता के साथ कहानी पढ़ी गई। शिक्षकों द्वारा दो परिस्थितियों को नाटक द्वारा प्रस्तुत किया गया: पहली, किसी के साथ ऐसी दुखद घटना हुई है और उसके पास जाएँ तो कैसे बात करें। दूसरी, लगभग आठ-दस साल बाद जब ऐसे

किसी व्यक्ति से दोबारा मिलें तब किस तरह से मिलें। फिर इसके बाद बच्चों के कुछ प्रश्न लिए गए।

बच्चों के प्रश्नों में ये बातें मुख्य तौर पर निकलकर आ रही थीं कि ऐसे व्यक्ति से प्रश्न क्यों नहीं करने चाहिए, एक खास शैली (संजीदगी और कोमलता) में बात करने की क्या ज़रूरत है? आदि। लेकिन कहानी और नाटक के माध्यम से उस बच्ची और अन्य बच्चों को यह समझने में ज़रूर मदद मिली कि यह नियति की एक सबसे क्रूर व दुखद घटना है और उस परिवार के लिए एक सदमा होता है जिसे बहुत संवेदनशील तरीके से देखा जाना चाहिए। साथ ही, समय के साथ-साथ परिवार को सारे कार्य करने होते हैं, हँसना-गाना पड़ता है। यह दुख हमेशा साथ चलता है और चले गए इन्सान की कमी कभी पूरी नहीं होती। निश्चित रूप से इस एक सत्र से बच्चों से हमारी बहुत ज़्यादा अपेक्षाएँ नहीं थीं। बस, कोशिश थी कि उस बच्ची को सहारा व हिम्मत मिले और अन्य बच्चों को एक मानवीय रास्ता मिले जिसपर चलकर वे अपनी और दूसरों की भावनाओं को समझने की कोशिश करें।

सत्र के बाद जब घर जाकर बच्ची ने माँ को कहानी व सारी बातें बताईं और यह भी बताया कि अब उसको कुछ अच्छा लग रहा है तो माँ को एक सुकून मिला। उन्होंने अपने इस सुकून को हम शिक्षकों के साथ साझा किया और हमारे प्रति आभार व्यक्त किया। हमें भी अपने द्वारा किए गए प्रयासों की सार्थकता का एहसास

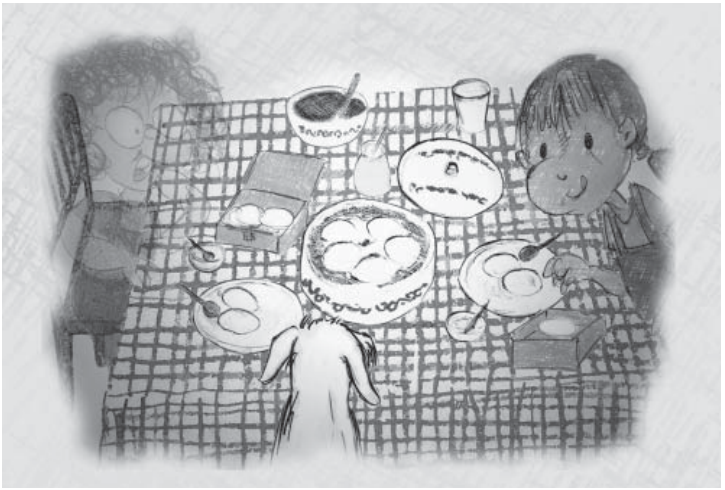

चित्र: 'मेरी ज़ोया चली गई' किताब से साभार

हुआ। बतौर शिक्षक मुझे लगा कि इस पूरे वाकये को इस कहानी की लेखिका (रिचा झा) के साथ भी साझा करना चाहिए। मैंने इस कृति के लिए उनको धन्यवाद कहा। अगले दिन उनकी ओर से भी भावपूर्ण धन्यवाद आया और उन्होंने किताब के निर्माण में चित्रकार और अन्य लोगों के योगदान को याद करते हुए उन्हें भी शुक्रिया कहा।

कहानियाँ बनीं माध्यम

मैं सोच रहा था कि एक कहानी बच्चों, शिक्षकों, लेखक, चित्रकार, परिवारों, स्कूल और समाज – सभी को शामिल करते हुए शिक्षा के एक स्वस्थ इकोसिस्टम का निर्माण करती है। उस बच्ची की दुनिया से हम सब की दुनिया जुड़ती चली गई। और होता भी यही है कि किसी एक की भी दुनिया अलग-थलग नहीं है, सभी के तार एक-दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। बतौर शिक्षक मुझे लगता है, न केवल विविध प्रकार की प्रचलित कहानियाँ बल्कि कई सारी कम कही जाने वाली कहानियाँ भी पढ़ी जानी चाहिए जिससे सभी बच्चे जुड़ पाएँ, जो

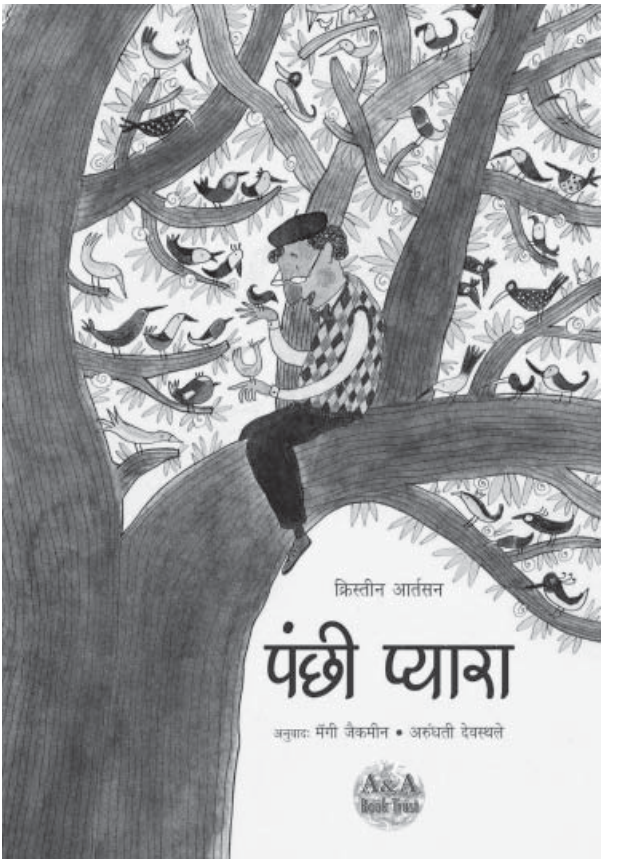

चित्र: *'पंछी प्यारा' किताब से साभार*

उनके मन को छू जाएँ, जो उनके दिल की गहराइयों के उद्‌गार को बाहर लाने में सहायक हों, और जो उनकी दबी एवं छिपी भावनाओं को शब्द देने में सहायक हों।

• पंछी प्यारा

ऐसी ही एक कहानी 'पंछी प्यारा' हमने कुछ दिन पहले ही पढ़ी।

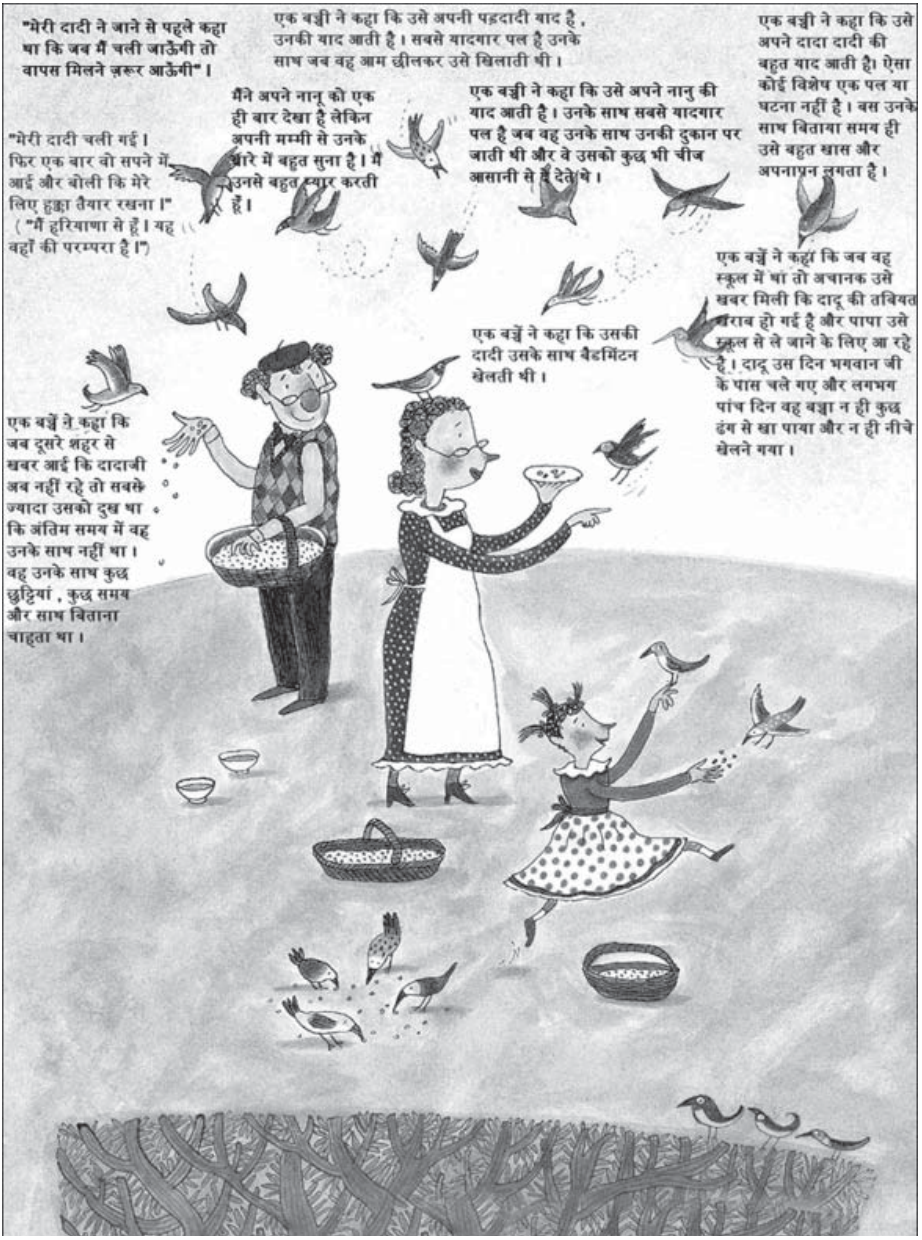

चित्र: *'पंछी प्यारा' किताब से साभार व उस पर बच्चों के मन के भावनात्मक उद्गार।*

आकर्षक चित्रों वाली यह कहानी एक छोटी लड़की और दादा-दादी की प्यार भरी ज़िन्दगी व दादी के पक्षियों और पेड़-पौधों के प्रति प्रेम के बारे में है। इसके साथ-साथ दादी के चले जाने पर दादाजी कैसे रहते हैं, कैसा महसूस करते हैं, कैसे प्रकृति से जुड़कर पंछियों के ज़रिए दादी के प्यार एवं अपनेपन को महसूस कर पाते हैं – यह सब भी संजीदा अन्दाज़ में बताती है। दादा-दादी, नाना-नानी या परिवार के किसी भी सदस्य के चले जाने का दुःख, हमारी संवेदना, उनसे जुड़ी यादें एवं जीवन में साथ बिताए पलों के बारे में कभी-कभी कोई बोल पाता है और कई लोग नहीं भी बोल पाते हैं। बस, दिल के किसी सन्दूक में यादें बन्द पोटली में सिमटकर रह जाती हैं। पोटली की अलटा-पलटी जीवन में भी उथल-पथल पैदा करती है। कहानी पढ़ते समय बहुत-से बच्चों की आँखें गीली हो गईं। उन्होंने दादा-दादी, नाना-नानी के साथ बिताए अपने यादगार पलों को याद कर साझा किया और उनके अनमोल प्यार को एक बार फिर महसूस किया।

• माछेर झोल

इसी तरह किताब *माछेर झोल* शाकाहारी बहुल इलाके के बच्चों के साथ पढ़ी गई। यह पिता-पुत्र के नाज़ुक सम्बन्ध, बंगाल के गली-मोहल्लों, बाज़ार, घर और दुर्गा पूजा को दिखाती हुई एक प्यारी-सी कहानी है। शुरुआत में इस कहानी पर कुछ इस तरह की प्रतिक्रियाएँ आईं – "हम तो शाकाहारी हैं", "छी, मछली को मारकर उसे बनाते हैं", "सर, यह चित्र (चूल्हे पर माछेर झोल बनता हुआ) जल्दी से हटा दीजिए – कड़ाही में मुझे मछली के टुकड़े और उसकी आँखें दिखाई दे रही हैं", "मछली बाज़ार का यह चित्र विचलित कर सकता है" आदि। इन सबके बावजूद बच्चों से कहानी के पात्रों, उनके जीवन संघर्षों, सुख-दुःख, हुनर व आपसी रिश्तों पर काफी बातचीत हुई।

चित्र: 'माछेर झोल' किताब से साभार

चित्र: 'माछेर झोल' किताब से साभार

• सडाको और कागज़ के पक्षी

"अब मैं कुछ दिनों तक खुश नहीं रह पाउँगी।" यह कहा, दस साल की एक छात्रा ने जब हमने कहानी की किताब *सडाको और कागज़ के पक्षी* पढ़ी। इसे पढ़कर यह जानने की कोशिश की कि आज जब कुछ देश महीनों-सालों से लगातार लड़ रहे हैं, निर्दोष लोग व बच्चे मारे जा रहे हैं तब यहाँ एक सुख-सुविधापूर्ण स्कूल में बैठे बच्चों के मन में क्या चल रहा है। यह दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान जापान पर एटम बम गिरने के बाद के हाहाकार, त्रासदी, मौतें व उसके कारण बहुत बाद तक होने वाली कैंसर जैसी भयंकर बीमारियों के बारे में एक संजीदा कहानी है। एक प्यारे-से परिवार में 12 वर्ष की एक लड़की, बम के रेडिएशन के कारण खून के कैंसर से ग्रस्त है। कैसे उसके दोस्त जापान की पुरानी मान्यताओं के अनुसार कागज़ से हज़ार क्रेन पक्षी बनाकर उसे ज़िन्दा बनाए रखने की कोशिश करते हैं लेकिन 644 पक्षी बनते-बनते वह बच्ची संसार को अलविदा बोल देती है। इसके साथ ही सडाको के रेस में भागने और चैंपियन बनने का सपना भी धूमिल हो गया। जापान के सामाजिक व्यवहार, लोगों की भावनाओं और संवेदनशील चित्रों से सज्जित यह एक अत्यन्त मार्मिक कहानी है।

दोस्ती, प्यार, परिवार का दुलार, नियति और आशा के बीच झूलती एक बच्ची की यह कहानी बच्चों के मन को तुरन्त ही छू गई। कहानी में जैसे-जैसे सडाको के दोस्त उसके लिए रंग-बिरंगे कागज़ के सारस पक्षी बनाते गए, कक्षा के बच्चों की उम्मीद बढ़ती चली गई कि शायद सडाको बच जाएगी। वह फिर से खेलने और दौड़ने लग जाएगी। लेकिन आखिरी पन्नों तक आते-आते उनकी आँखें डबडबा गईं। वे भरी आवाज़ में कहने लगे कि "यह बहुत ही दर्द भरी कहानी है। युद्ध बिलकुल नहीं होना चाहिए, बेकसूर लोगों व बच्चों को चोट नहीं लगनी चाहिए, जिन देशों को लड़ना है, उनके हेड आपस में लड़ें और बाकी लोग बचे रहें।"

चित्र: 'सडाको और कागज़ के पक्षी' किताब से साभार

• शिन की तिपहिया साइकिल

इसी के साथ किताब *शिन की तिपहिया साइकिल* भी बच्चों को पढ़ने के लिए दी गई। यह एक ऐसी कहानी है जो पाठक के दिल में, हमेशा-हमेशा के लिए जंग और लड़ाई के खिलाफ नफरत पैदा करती है। दूसरे विश्वयुद्ध में जब अमेरिका ने हिरोशिमा पर एटम बम गिराया तो उसने भयंकर तबाही मचाई। युद्ध में न केवल सैनिक मरते हैं, बल्कि हज़ारों निरपराध लोग और मासूम बच्चे भी मारे जाते हैं। कहानी में उस समय तीन साल का नन्हा शिन अपनी तिपहिया साइकिल चला रहा था और उस धमाके में स्वाहा हो गया। एक अभिभावक ने कहा, "कहानी इतनी दर्दनाक और मार्मिक थी कि बच्चे तो क्या, मैं भी नहीं पढ़ पाई।"

विचारशील बनें बच्चे

बतौर शिक्षक कई बार मेरे मन में यह सवाल उठता है कि इन कहानियों से जिन बच्चों का दिल ज़्यादा द्रवित होता है, क्या मैं उनके साथ सही कर रहा हूँ? लेकिन फिर मुझे लगता है कि इस तरह की कहानियाँ सुनाना ज़रूरी है ताकि बच्चे दुनिया की सच्चाई से जुड़ सकें। मेरा मानना है कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बच्चे को काबिल इन्सान बनाने के साथ-साथ एक अच्छा इन्सान बनाना भी है।

शिक्षा का जो तरीका हम अपना रहे हैं, क्या इससे बच्चों के साथ-साथ हम भी एक अच्छे समाज की कल्पना कर सकते हैं? क्या यह शिक्षा समाज में बदलाव की ओर एक कदम होगी?

मेरी कोशिश यही रहती है कि कम-से-कम ये जल्दी द्रवित होने वाले मासूम उन राष्ट्र प्रमुखों से अच्छे नागरिक बनें जो कहने के लिए तो बहुत पढ़े-लिखे होते हैं लेकिन दुनियाभर में युद्ध करने व नफरत फैलाने के लिए ज़िम्मेदार हैं। शायद ऐसी ही विविध कहानियाँ पढ़कर बच्चे विचारशील, कोमल व संवेदनशील हृदय के नागरिक बनें। इस तरह के नागरिक हज़ारों अन्य लोगों को भी करुणा की नज़र से देख पाएँगे जिससे शायद हम एक शान्तिपूर्ण विश्व की कल्पना कर सकते हैं।

चित्र: *'शिन की तिपहिया साइकिल' किताब से साभार*

आभार: मैं इस लेख के लिए सुश्री स्मृति जैन (सह-संस्थापक), डॉ. तपस्विनी साहू (अकादमिक निदेशक) तथा सुश्री रेशमी दस्तीदार (संरक्षक) का आभारी हूँ। भाषा को कला का रूप देने में तथा साहित्य का गहन एवं व्यापक दृष्टिकोण देने के लिए मैं डॉ. सोनिका कौशिक और सुश्री शिवानी बजाज (पराग, टाटा ट्रस्ट) का आभार व्यक्त करता हूँ।

वरुण गुप्ता: PGDLT (पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन लर्निंग एंड टीचिंग) किया है। वर्तमान में गुरुग्राम के एक निजी स्कूल में अध्ययन एवं अध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

सन्दर्भ:

- मेरी ज़ोया चली गई – रिचा झा, *एकलव्य* प्रकाशन।
- माछेर झोल – रिचा झा, *एकलव्य* प्रकाशन।
- पंछी प्यारा – क्रिस्तीन आर्तसन, ए एंड ए बुक्स।
- सडाको और कागज़ के पक्षी – एलीनेर कोयर, भारत ज्ञान विज्ञान समिति।
- शिन की तिपहिया साइकिल – तातसुहारु कोडामा, वॉकर एंड कम्पनी।

रियाज़ का रहस्य

गोपाल मिड्ढा

जब मैं करीब दस वर्ष का था तब मैंने ज़ाकिर हुसैन का एक टीवी इंटरव्यू देखा था। उस इंटरव्यू में उन्होंने एक खूबसूरत शब्द का इस्तेमाल किया था 'रियाज़'। उनसे पूछा गया था कि तबला बजाने में उन्होंने इतनी महारत कैसे हासिल की। उन्होंने मुस्कुराते हुए बताया कि वे और उनके उस्ताद अल्ला रक्खा रोज़ घण्टों रियाज़ करते हैं। मुझे अचरज हुआ कि विश्व के सबसे माहिर तबला वादक बनने के बाद भी उनका रियाज़ रुका नहीं। काश हम शिक्षा में भी रियाज़ या अभ्यास को इतना ही महत्व देते।

रियाज़ या अभ्यास का सिर्फ संगीत से ही नहीं, बल्कि स्कूली शिक्षा से भी करीब का नाता है। लेकिन अगर आप इस बारे में किसी शिक्षक या छात्र से बात करें तो अभ्यास उनके लिए एक अरोचक भार है। यह गैरदिलचस्पी शायद इसलिए ज़्यादा है क्योंकि हम रियाज़ के विभिन्न पहलुओं को अपनाने की बजाय उसे एक बोरिंग ड्रिल की भाँति सम्बोधित करते हैं। कुछ शिक्षक तो छात्रों को अनुशासित करने के लिए रियाज़ की 'सज़ा' भी दे देते हैं। पर रियाज़ सज़ा नहीं बल्कि मज़ा है, और यह मज़ा उस्ताद ज़ाकिर हुसैन की मुस्कान में साफ झलकता है।

आप शायद रियाज़ का यह मज़ा आज भी उठाते हैं। यकीन न हो तो अपने अनुभव पर गौर करें। कोई भी ऐसा कार्य सोचें जिसमें आप माहिर हैं, जैसे क्रॉस्वर्ड या सुडोकू सुलझाना, शतरंज खेलना, कॉफी बनाना या फिर अपने फोन से सेल्फी खींचना। बार-बार रियाज़ करने से ही आप इन कार्यों में दक्ष बने हैं। आपने इन कार्यों को शायद रोज़ किया होगा, और जहाँ अरोचक तो दूर, आपको इनमें काफी मज़ा भी आया होगा। तो फिर रोज़ गणित की समस्याएँ सुलझाना या हिन्दी/अँग्रेज़ी में लेख लिखना इतना दूभर क्यों लगता है? यह सिर्फ शौक या रुचि की बात नहीं, इन गतिविधियों का रियाज़ भी स्कूली शिक्षा के अभ्यास से अलग नहीं है।

जिस तरह का रियाज़ हम शिक्षा में आम तौर पर करते आए हैं, उसे बदलना होगा। इसके लिए यहाँ पाँच सुझाव प्रस्तुत हैं।

पहला - विचारपूर्वक बदलाव

जी हाँ, अभ्यास यानी बुद्धिहीन दोहराव नहीं बल्कि गतिविधि को करने में हर बार थोड़ा बदलाव करना। जिस तरह आप सेल्फी खींचते वक्त अपने चेहरे के भाव तरह तरह से बदलते हैं या फोन को विभिन्न प्रकार से टेढ़ा और ऊँचा करते हैं, वही सोच शिक्षा के अभ्यास में भी लानी होगी। जब शिक्षक गणित का अभ्यास करवाएँ तो एक ही तरह के सवाल की बजाय थोड़ा परिवर्तन करके देखें कि क्या होता है। क्यों न एक सवाल सुलझाने के बाद, उसी सवाल को थोड़ा बदलकर इस तरह

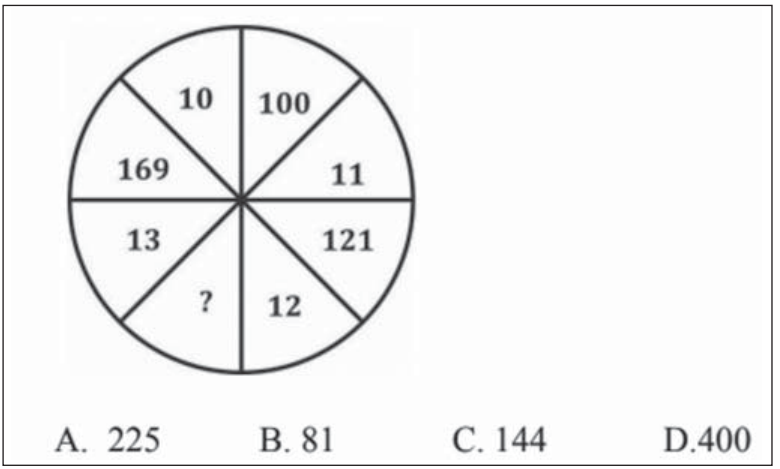

चित्र-1

घुमाएँ कि छात्र सोचने पर मजबूर हो जाएँ? राष्ट्रीय परख 2024 से एक प्रश्न का उदाहरण लेते हैं:

प्रश्न: दी गई आकृति (चित्र-1) में, संख्याओं को एक शृंखला के अनुसार लिखा गया है। लापता संख्या का पता लगाएँ।

इस प्रश्न पर चर्चा करने के बाद, जब छात्र विकल्प C का चयन करें, तो शिक्षक इस तरह के सवाल पूछ सकते हैं:

- यह शृंखला किस नियम के अनुसार बनाई गई प्रतीत होती है? अगर हम इसी आकृति में दो और भाग बनाएँगे, तो उन भागों में कौन-सी संख्याएँ आएँगी?
- अगर हमें ऐसी ही आकृति क्यूब शृंखला के अनुसार बनानी हो, तो हम किन संख्याओं को बदलेंगे?
- अब आप खुद सोचकर अपनी कॉपी में ऐसी ही एक आकृति बनाएँ और अन्य सब आपकी आकृति की शृंखला का नियम सोचकर बताएँ।

छात्रों को पाठ में से स्वयं सवाल बनाने का अभ्यास कराएँ, सिर्फ दिए हुए प्रश्नों का उत्तर बताने का अभ्यास नहीं। फिर यह देखें कि कौन कितना मुश्किल सवाल बनाता है।

इससे छात्रों की दिलचस्पी ही नहीं बल्कि रचनात्मक सोच भी बढ़ेगी। साथ ही, छात्रों के ज्ञान-स्तर का भी अचूक पता चलेगा और शिक्षक भी कुछ नया सीखेंगे। छात्रों की यह गलतफहमी भी दूर होगी कि गणित का मतलब है, सही जवाब पाते ही, अगले प्रश्न को सुलझाना।

दूसरा - प्रतिक्रिया या फीडबैक

रियाज़ के दौरान जल्द फीडबैक मिलना चाहिए कि आप सही दिशा में जा रहे हैं या नहीं। अगर रसायन विज्ञान की कक्षा हो तो देखें कि किस तरह कुछ चीज़ों का माप बदलते ही प्रयोग के परिणाम बदल जाते हैं। प्रतिक्रिया जितनी जल्दी मिले उतना ही बेहतर होगा। छात्र को उनके लेखन पर अगले दिन ही प्रतिक्रिया दें। छात्र भी एक-दूसरे को प्रतिक्रिया दे सकते हैं जिससे वे एक-दूसरे से काफी कुछ सीखेंगे। आपसी समीक्षा या reciprocal peer review जैसी तकनीक उपयोगी पाई गई है।

यदि छात्रों को एक हफ्ते बाद आपकी प्रतिक्रिया मिलती है, तो तब तक उनकी दिमागी गाड़ी अगले स्टेशन तक बढ़ चुकेगी और आपके द्वारा गहराई से दी गई प्रतिक्रिया को पढ़ना, उनके लिए एक औपचारिकता मात्र रह जाएगी।

तीसरा - गलती और अचरज

रियाज़ में अचरज का होना ज़रूरी है। और यह अचरज जब गलतियों से उभरे तो और भी बेहतर होता है। जैसे कि अगर आप बाँसुरी से कुछ सुर बजाने का अभ्यास कर रहे हों और अचानक एक मधुर संगीत बज

उठे, तो यह अचरज प्रेरणा और जिज्ञासा को जागरूक कर सकता है। इस गलती से कुछ अनपेक्षित सीख हासिल हो सकती है।

अचरज का शिक्षा में गहरा महत्व होता है। गणित में भी कुछ अभ्यास के सवाल ऐसे हों जिनके उत्तर अचरज भरे हों। जैसे अगर आप शतरंज के पहले खाने में एक चावल का दाना रखें और फिर हर अगले खाने में चावल के दानों को दुगना करते जाएँ तो आखिरी यानी 64वें खाने तक इतने चावल के दाने चाहिए होंगे जिससे भारत की भूमि चावल की 1 मीटर ऊँची परत से ढँक जाएगी। इस तरह का अचरज अभ्यास में लाएँ।

चौथा - जश्न

रियाज़ करना कई बार आसान नहीं होता क्योंकि उसमें सोच-शक्ति और दृढ़ निश्चय का ज़ोर लगता है। इसलिए रियाज़ करने के बाद खुद को शाबाशी दें कि आप और आपके छात्रों ने रियाज़ के लिए समय निकाला और अपने निश्चय को कायम रखा। इससे आपके दिमाग में रियाज़ के साथ सकारात्मक भावनाएँ जुड़ जाएँगी। हो सके तो अपने अभ्यास के अनुभव कहीं लिखें। इससे आपको अपनी प्रभुत्वता का एहसास जल्दी होगा। जैसे, छात्र अब 1 घण्टे में 600 शब्द की बजाय 750 शब्दों का लेख लिख सकते हैं। प्रगति को एक अन्दरूनी जश्न में तब्दील करें।

पाँचवाँ - साथ मिलकर सीखना

रियाज़ में अक्सर उस्ताद और शागिर्द शामिल होते हैं जिसमें शिद्दत के अलावा साथ मिलकर अभ्यास करने का बहुत महत्व होता है। उस्ताद और शागिर्द जब साथ में रियाज़ करते हैं तो इससे दोनों की कला निखरती है। इसी तरह रियाज़ छात्रों के साथ-साथ शिक्षक के लिए भी महत्व रखता है। कुछ लोग तो शिक्षण को एक अनन्त रियाज़ मानते हैं क्योंकि एक अच्छा शिक्षक हमेशा अपने अध्यापन के अभ्यास के ज़रिए सीखने का दिलचस्प खेल जारी रखता है, चाहे वह एक उस्ताद ही क्यों न हो। यदि शिक्षक और छात्र एकसाथ कुछ पुराने और नए सवालों को पूछने और सुलझाने का अभ्यास करेंगे तो असल मायनों में रचनात्मक अध्यापन और सीखना हो पाएगा।

* * *

जी हाँ, रियाज़ मज़ेदार हो सकता है, लेकिन तभी जब वह सही ढंग से व विचारपूर्वक किया जाए। जब छात्र बिना किसी दबाव के खुद से अभ्यास में भाग लेने लगते हैं तब विषयों पर उनकी पकड़ और उनका प्रभुत्व बहुत जल्द हो पाता है। यदि उन्होंने स्वेच्छा से रियाज़ को गले लगा लिया है तो प्रगति झक मारकर उनके पीछे दौड़ी आएगी। इसीलिए आप ज़ाकिर हुसैन और अल्ला रक्खा को रियाज़ करते समय मुस्कुराते हुए पाएँगे।

गोपाल मिड्ढा: पिछले 15 वर्षों से शिक्षा के विभिन्न पहलुओं से जुड़े हैं। उन्होंने भारत एवं अमेरिका में शिक्षण नेतृत्व, अध्यापन, शिक्षक तैयारी और स्कूलों को कैसे बेहतर बनाया जाए, पर शोध किए हैं। आजकल वे शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर एक अनुसंधान केन्द्र 'शिक्षा - एक खोज' (www.shikshaekkhoj) स्थापित करने में जुटे हैं।

सभी चित्र: उर्वशी दुबे: बच्चों के लिए कल्पनाशील चित्र-पुस्तकें बनाने की अपनी प्रतिभा के लिए जानी जाती हैं। उनकी 18 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं, और कई पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। वे बचपन से ही चित्रांकन और चित्रण का अभ्यास कर रही हैं, जिसने उन्हें कला को करियर के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित किया। उनके अन्य कार्यों को जानने के लिए देखें: www.urvashidubey.com

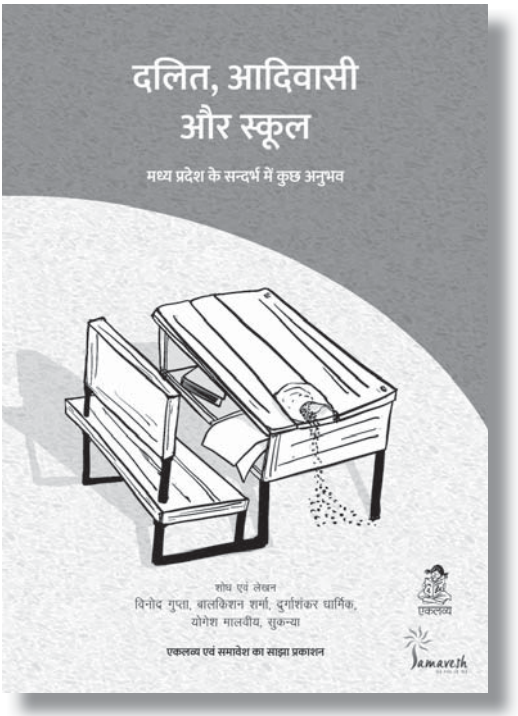

दलित, आदिवासी और स्कूल

मूल्य: ₹125

ज़मीनी शोध पर आधारित यह किताब दलित और आदिवासी विद्यार्थियों के स्कूली अनुभवों को प्रस्तुत करती है। साथ ही, दलित और आदिवासी बच्चों की शिक्षा से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण सवालों को उठाती है।

यह किताब उन सभी शिक्षकों, शोधकर्ताओं और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है जो शिक्षा और जाति से जुड़े ज़रूरी सवालों से इत्तिफाक रखते हैं।

एकलव्य

ऑर्डर करने के लिए सम्पर्क करें:
फोनः +91 755 297 7770-71-72 pitara@eklavya.in
वेबसाइटः www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

तोतिया तीतर

अनिल सिंह

अभी कुछ महीने पहले, मई 2024 में प्रभात का नया कविता संग्रह आया था जिसे *एकलव्य* ने प्रकाशित किया है। यह कई मायनों में पिछले संग्रहों से बिलकुल अलग और अनूठा है। अव्वल तो यह छोटी-छोटी कविताओं का संग्रह है, छोटी मतलब हर कविता महज़ चार लाइनों की ही है। और दूसरा यह कि चार लाइनों में ही कमाल के दृश्य, विचार, भाव तीव्रता और अद्‌भुत भाषा संसार रच देने में माहिर रहे हैं, प्रभात। प्रभात की कविताओं में मामूली विषयों की उच्चतम और नायाब अभिव्यक्ति मिलने की पूरी सम्भावना रहती है।

बेमिसाल चित्र व अवलोकन

अवलोकन के मामले में प्रभात का जवाब नहीं। जिन पर किसी की नज़र नहीं है उनपर प्रभात की नज़र है। 'पंछी' नाम से संग्रह की पहली कविता ही प्रभात की बारीक और व्यापक नज़र का परिचय देती है-

रेशों से घर सिल लेते हैं,
तिनकों से घर बुन लेते हैं
पंछी बरगद के पत्तों पर
पैदल-पैदल चल लेते हैं।

इस सुविधाभोगी दुनिया और दौड़-भाग के साथ तकनीक से लबरेज़ जीवन में प्रभात को बरगद के पत्तों पर पंछियों का पैदल-पैदल चलना दिख जाता है। वो ठहरकर इत्मीनान से उन्हें देखते हैं और देखते ही रहते हैं। और वे न सिर्फ इसे देखते हैं बल्कि पूरी गरिमा के साथ उसका बयान करते हैं। पत्तों पर पंछियों के पैदल-पैदल चलने में जितनी सादगी है, उतनी ही भव्यता भी है।

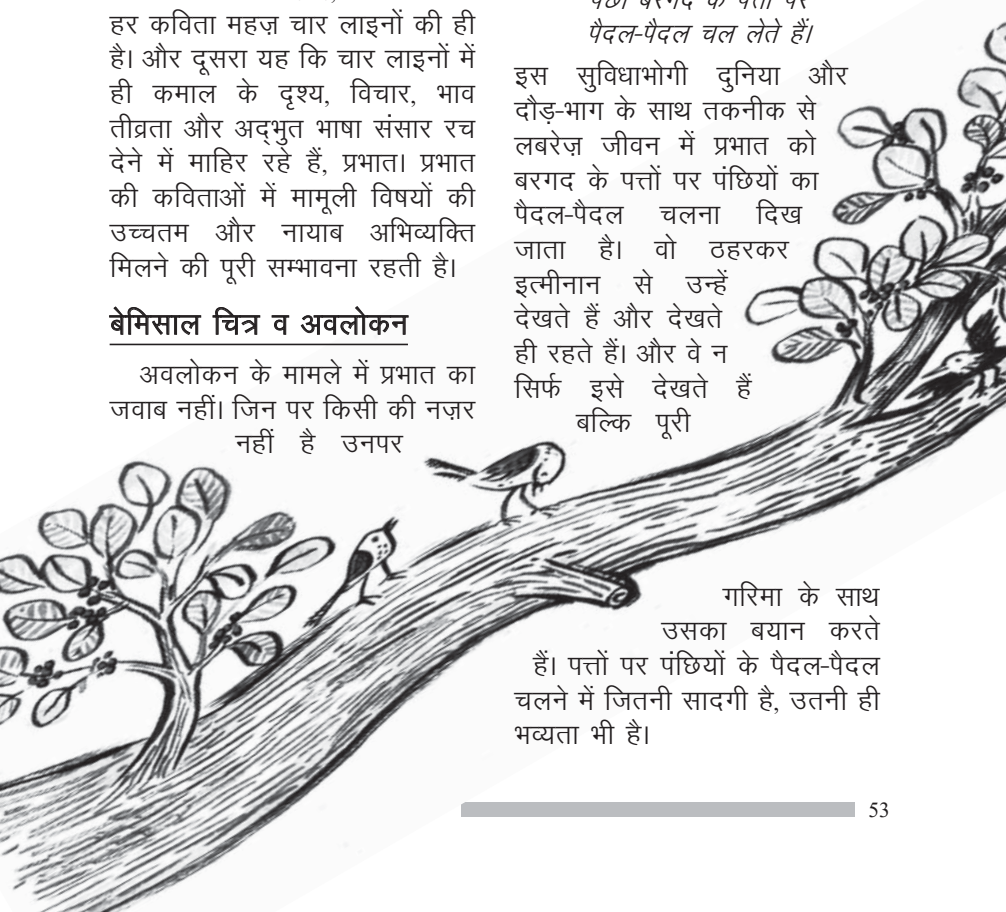

एक और कविता में मुर्गी डाँट रही है मुर्गे को कि तमीज़ से छींको। यह समीकरण पहले कभी न देखा गया, न सुना गया है। लेकिन प्रभात की नज़र यह भाँप लेती है कि मुर्गे और मुर्गी के बीच क्या चल रहा है। छोटा सीटू सो रहा है और उसके जाग जाने को लेकर मुर्गी चिन्तित है। मुर्गे को समझाने का और कोई तरीका नहीं।

सोया सीटू जाग रहा है
बार-बार इस छींक से
मुर्गे से बोला मुर्गी ने
छींको ज़रा तमीज़ से

संग्रह में प्रोइती रॉय के चित्र बेमिसाल हैं। 'मुर्गे की छींक' वाली कविता के साथ जो चित्र है, उसे कविता पढ़ते हुए अगर थोड़ा ठहरकर देखें, तो उसमें मुर्गी का डाँटना जैसे सुनाई पड़ सकता है। मुर्गे के शरीर की लोच, मुर्गे के नज़दीक आकर मुर्गी का यह हिदायत देना, झुककर धीरे-से बोलना कि छोटा सीटू सो रहा है, आँखों में गुस्सा और शिकायत उस चित्र में साफ झलकती है। इसके साथ ही, मुर्गे का लाचार होकर छींकना और यह स्वीकारना कि 'वह क्या करे, छींक रुक ही नहीं रही' भी आप महसूस कर सकते हैं। छींकते समय शरीर का आगे की तरफ झुकना, आँख बन्द हो जाना – सब कुछ बहुत ही बारीकी-से चित्र में दिखाया गया है।

भाषा की हेराफेरी

भाषा से खेलने में भी प्रभात पीछे नहीं हैं। एक कविता में वे 'बयाएँ' और 'दुनियाएँ' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जो आम तौर पर मिलते नहीं, पर प्रभात इन्हें गढ़ते हैं। एक जगह उन्होंने झिंगुर के साथ उसकी पार्टनर के लिए 'झिंगुरानी' शब्द का इस्तेमाल किया है जोकि यूँही अच्छा लगता है। कविता में तो यह और भी सुन्दर लग रहा है। एक और कविता में टिण्डा के साथ भटिण्डा और भिण्डी के साथ रावलपिण्डी का जोड़ इतना खूबसूरत लगता है कि फिर अगली पंक्ति फीकी लगने लगती है।

'साँप की छतरी' कविता देखते हैं-

साँप ने कुकुरमुत्ते को
छतरी समझ के
बारिश में तान ली
अपनी समझ के

इस कविता में 'अपनी समझ के' का जो भाव है, वह बिरला है। इसमें एक सहचर्य है, आपसदारी है जो प्रकृति में ही ज़्यादा देखने को मिलती है। साँप की मासूमियत और छतरी का अबोला ही इस कविता की जान है।

एक और कविता 'चीना-चीनी' देखते हैं-

चींटा चींटी
पाकर चीनी
खेल रहे थे
छीना छीनी

इस तरह की सुन्दर बात प्रभात ही कर सकते हैं। छोटी-छोटी पंक्तियों में पूरा दृश्य, पूरा मज़ा, पूरी भाषा। छीना छीनी कहकर उन्होंने इसे छीना झपटी से बचा लिया है। इसमें खेल है, प्यार है और नोक-झोंक है। झगड़ा नहीं है। छीना शब्द चींटा के लिए और छीनी शब्द चींटी के लिए सुरक्षित कर दिया है।

इसके साथ बने चित्र में चींटा और चींटी जिस तरह छीना-छीनी खेल रहे हैं, उसमें खेल, ताकत, खिंचाव और अधिकार – सबकुछ साफ दिखता है। चींटा-चींटी जैसे फिगर में ये सब अभिव्यक्तियाँ डाल पाना कोई आसान काम नहीं। प्रोइती जैसे चित्रकार ही ऐसा कर पाते हैं।

'रिक्शेवाला' कविता में प्रभात कहते हैं-

स्टेशन से घर-गलियों तक
सफर सभी का हो गया

लेकिन रिक्शेवाले का सफर अभी बाकी है, उसका घर जाने कहाँ है। सभी को उनके गन्तव्य तक पहुँचाकर,

देर रात को रिक्शेवाला
रिक्शे पर ही सो गया

'रिक्शेवाला' कविता के लिए प्रोइती रॉय द्वारा बनाया, रिक्शे पर सोता हुआ रिक्शेवाला इतना जीवन्त है कि उसके चेहरे पर थकान, मासूमियत, लाचारी और सन्तोष के मिले-जुले लेकिन स्पष्ट भाव दिखते हैं। इतने से चेहरे पर महज़ चन्द रेखाओं से इतने सजीव चित्रण कम ही देखने को मिलते हैं।

अपने ही रिक्शे में परायों की तरह आधा लटका, थककर गहरी नींद में सोया, 50-55 साल की उम्र का एक मेहनतकश व्यक्ति पूरे सामाजिक ताने-बाने का प्रतिनिधि जान पड़ता है।

'शाम की तितली' कविता में प्रभात की कल्पना की बानगी देखिए-

सूरज डूबा शाम ढली
उड़ी उजाले की तितली
अँधियारे में डूब गए
घर जंगल मैदान गली

शाम ढलते ही उजाले की तितली उड़कर चली गई है और अब घर, जंगल, मैदान, गली – सब अँधियारे में डूब गए हैं। उजाले को तितली कहने पर उसका हलकापन, उजलापन और थोड़ी देर कहीं ठहरकर फिर उड़ जाने की फितरत का अच्छा बिम्ब कविता में बनता है। अँधेरे की नदी जैसे अपनी पूर पर है और घर, जंगल, मैदान, गली – सब उसमें डूब गए हैं।

'रेल और व्हेल' कविता में एक बिलकुल नई बात देखने को मिलती है।

रेल चली भाई रेल चली
नभ में कुरजों की बेल चली
समन्दरों में व्हेल चली,
व्हेल चली भाई व्हेल चली

यह जो 'नभ में कुरजों की बेल' है, यह बिलकुल नया प्रयोग है। बगुलों की कतारें, पंक्तियाँ, झुण्ड, पंछियों के बादल तो हमने सुने और पढ़े हैं। पर यह कुरजों की बेल प्रभात का कमाल है। रेल, बेल और व्हेल का संयोजन भी अनूठा है।

एक ही दृश्य में रेल का चलना, नभ में कुरजों की बेल का चलना और समन्दर में व्हेल का चलना – इन तीनों का एक ही फ्रेम में होना चित्रकार की कल्पना शक्ति और उसके अवलोकन की गहराई बताता है।

'मूँछों की छड़ी' कविता में मूँछ का लोगों से टकराने वाला विज़ुअल बड़ा ही मज़ेदार है।

आफत की सी छड़ी हो गई
मूँछ इतनी बड़ी हो गई
जब सीधी तन जाती थी
लोगों से टकराती थी

प्रभात लम्बी और बड़ी-बड़ी मूँछों वालों के साथ उठने-बैठने वाले व्यक्ति हैं, इसलिए उनकी कहन में एक प्रामाणिकता है।

संग्रह की शीर्षक कविता 'तोतिया तीतर' में प्रभात दरअसल, एक खोजी और संशय से देखने वाले की तरह से लिखते हैं और अपना कौतूहल

जताते हैं - घास की तरह दिखने वाला हरा टिड्डा ऐसे चल रहा है जैसे हरे रंग का तीतर घास के भीतर चल रहा हो।

घास को चलते कभी न देखा
वह टिड्डा था घास सरीखा
चलता था जो घास के भीतर
जैसे कोई तोतिया तीतर

यह कविता संग्रह हमारे इर्दगिर्द के मामूली लेकिन अहम और खूबसूरत किरदारों का कोलाज है। इसमें भाषा का रोचक संसार है। बारीकी-से देखना है और मासूमियत से कहना है। न कोई गूढ़ता है न लफ्फाज़ी। प्रभात को यह आता ही नहीं; इसलिए, कहा जाता भी नहीं।

अनिल सिंह: पिछले 25 वर्षों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। विगत डेढ़ दशक से प्राथमिक शिक्षा उनका प्रमुख कार्य रहा है। भोपाल के आनंद निकेतन डेमोक्रैटिक स्कूल की संकल्पना के दिनों से वे जुड़े रहे और उसका संचालन किया। वर्तमान में, टाटा ट्रस्ट के पराग इनिशिएटिव से जुड़कर बाल साहित्य और पुस्तक संवर्धन का काम कर रहे हैं।

सभी चित्र *तोतिया तीतर* किताब से लिए गए हैं।

कविता संग्रह: तोतिया तीतर, लेखक: प्रभात, प्रकाशक: एकलव्य फाउंडेशन, प्रकाशन वर्ष: 2024, पृष्ठ संख्या: 35, मूल्य: 70 रुपए।

बच्चे, नागरिकता और कविता

समीना मिश्रा

हाल ही में एक दोस्त ने बताया कि किस तरह से हर सुबह अखबार पढ़ने के बाद किसी अनहोनी की आशंका से उसे बोझिल-सा महसूस होने लगता है और उसने मुझसे पूछा कि मैं आज के इस निराशा भरे दौर का सामना कैसे कर रही हूँ। उसका यह सवाल सुनकर मैं अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के बारे में सोचने लगी, जिसकी बदौलत मैं विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमियों के बच्चों की ज़िन्दगियों से रूबरू हो पाती हूँ।

पिछले आठ महीनों में, मैं भारत की तीन अलग-अलग जगहों में रही, जिस दौरान मैंने नागरिकता के बारे में बच्चों के विचारों को जानने-समझने के लिए उनसे सघन बातचीत की। इनमें से कई बच्चे अभावों में जीवन बिताते हैं। उनके घर ऐसे इलाकों में हैं जहाँ बुनियादी सुविधाओं का अभाव है, उनके स्कूलों में सीमित संसाधन हैं, उन्हें भीड़-भाड़ वाली जगहों के बीच में ही खेलने के लिए जगह बनानी पड़ती है, और वे टीवी और फोन पर जो कुछ भी देखते हैं, उसमें से ज़्यादातर उनकी पहुँच से बाहर होता है। उनकी और मेरी दुनिया में ज़मीन-आसमान का फर्क है क्योंकि मैं विशेषाधिकार प्राप्त हूँ। इस दमनकारी दुनिया में लोग प्रतिदिन जिस किस्म के संघर्षों का सामना करते हैं, मैं वैसे संघर्षों से अछूती हूँ।

तो फिर आज़ादी के 75वें साल में उनसे स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के बारे में पूछने का मेरे जैसे विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति के लिए क्या मतलब है? लतामणि कहती हैं कि "हम अपने बारे में जो कहानियाँ सुनाते हैं, उनसे हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पता चलती है।" मुझे यह उम्मीद है कि बच्चों और नागरिकता पर आधारित प्रोजेक्ट 'हम हिन्दुस्तानी' के माध्यम से मैं ऐसी कहानियाँ सामने ला सकूँगी, जो हमारे बीच की भिन्नताओं एवं विविधताओं को समझने और स्वीकार करने के साथ-साथ उनसे ऊपर उठने में भी मददगार साबित हों, ताकि हम उन मूल्यों को याद कर सकें जो हमें एकजुट करते हैं। हम यह समझ सकें कि चूँकि आज़ादी वाले दिन स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे का वादा हम सभी से किया गया था, इनकी माँग करना हमारा हक है; और यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम एक ऐसी दुनिया बनाएँ, जिसमें इन समस्त मूल्यों का सम्मान किया जाता हो।

रचनात्मक गतिविधियाँ

मैं बच्चों के साथ जो भी गतिविधियाँ करती हूँ, उनमें से ज़्यादातर रचनात्मक गतिविधियाँ होती हैं, जिसमें वे न सिर्फ अपनी कलात्मक रचनाओं को साझा करते हैं, बल्कि एकसाथ मिलकर बहुत कुछ बनाते भी हैं। चाहे औपचारिक हो या अनौपचारिक, किसी भी तरीके से कक्षा में कलाओं को शामिल करने से बच्चों को अपनी दुनिया को एक अलग नज़रिये से देखने का प्रोत्साहन मिलता है, कुछ इस तरह से जैसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा। कलाओं के माध्यम से वे खुद को अभिव्यक्त भी कर पाते हैं - उन्हें अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का प्रोत्साहन मिलता है और इस पूरी प्रक्रिया से उन्हें अपनी ज़िन्दगी और अपनी दुनिया को समझने में मदद मिलती है।

माइकेल बोनेट और स्टीफन क्यूपर्स जैसे विद्वान कहते हैं, "अपने विचारों को उनके वास्तविक रूप में या कल्पना के माध्यम से व्यक्त करके और उनके बारे में दुनिया की प्रतिक्रिया महसूस करके ही हम अपने विचारों के वास्तविक मायने समझ सकते हैं और अपने आसपास की दुनिया को समझ सकते हैं।" कला के साथ जुड़कर ही बच्चे खुद को और अपने आसपास के परिवेश को समझ पाते हैं। इससे उन्हें कला के माध्यम से खुद को अभिव्यक्त करने और अपनी पहचान के नए पहलुओं को विकसित करने का अवसर मिलता है। जिस तरह इस निबन्ध को लिखने

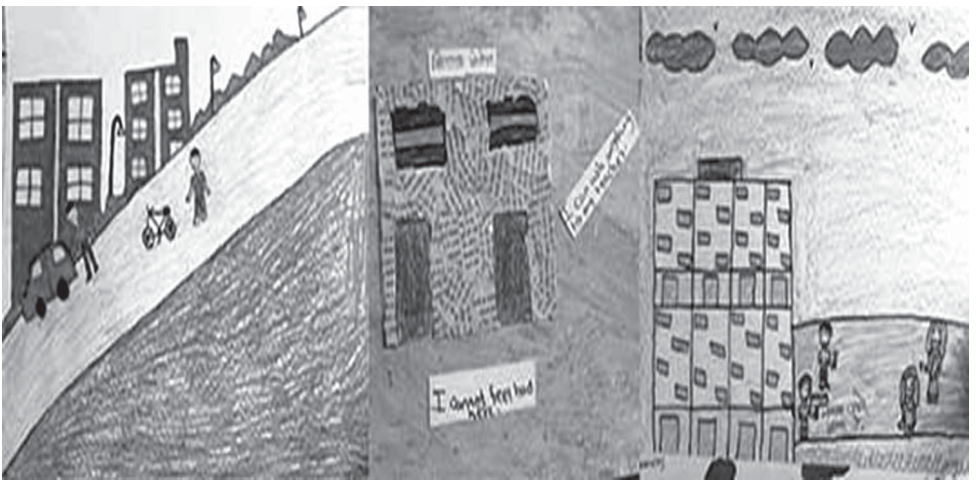

चित्र-1: *रचनात्मक गतिविधियों के दौरान बच्चों द्वारा बनाए गए चित्र।*

के दौरान मैं अपनी अभिव्यक्तियों को स्पष्ट करती जा रही हूँ और अपने विचारों की ज़िम्मेदारी ले रही हूँ, ठीक उसी तरह, रचनात्मक गतिविधियाँ बच्चों को दुनिया के साथ एक रिश्ता बनाने और उसके प्रति ज़िम्मेदारी की भावना विकसित करने का अवसर देती हैं। बच्चों के साथ बातचीत के दौरान यह बात मुझे बार-बार स्पष्ट होती गई।

यह लेख बच्चों के साथ मेरे काम पर आधारित है। इसके तहत बच्चे लिखित सामग्री, चित्र और ध्वनि का इस्तेमाल करके एकसाथ मिलकर रचनात्मक कार्य करते हैं। 'हम हिन्दुस्तानी' नाम की इस परियोजना में बच्चों के साथ कार्यशालाएँ आयोजित की जाती हैं, जो स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के विचारों के इर्द-गिर्द केन्द्रित होती हैं। इनमें समूह चर्चाओं के द्वारा बच्चों को विविध विषयों पर रचनात्मक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इस लेख में मैं ऐसी ही एक बातचीत पर ध्यान केन्द्रित करूँगी, जिसके फलस्वरूप दो किशोर लड़कियों ने 'मेरे लोग' कविता लिखी।

नटवर पारेख कम्पाउण्ड, गोवंडी

नटवर पारेख कम्पाउण्ड (एनपीसी) गोवंडी इलाके में ऊँची इमारतों का एक समूह है। इन्हें 2007 में मलिन बस्ती पुनर्वास प्राधिकरण की पहल के तहत मुम्बई के विभिन्न हिस्सों में झुग्गी और फुटपाथ पर रहनेवालों को औपचारिक आवास प्रदान करने के उद्देश्य से बनाया गया था। शहरभर की विभिन्न शहरी आधारभूत संरचनाओं को हरी झण्डी दिखाते हुए 10 से भी ज़्यादा अलग-अलग जगहों के लोगों को यहाँ स्थानान्तरित किया गया था। 25,000 से भी ज़्यादा निवासियों के साथ, 5 हेक्टेयर का यह क्षेत्र दक्षिण एशिया के सबसे ज़्यादा घनी आबादी वाले शहरी क्षेत्रों में से एक है, जहाँ हरेक व्यक्ति के लिए केवल 1.9 मीटर की सीमित जगह उपलब्ध है (कम्युनिटी डिज़ाइन एजेंसी के आँकड़ों के अनुसार)।

एनपीसी के कई रहवासी स्थानीय निवासी हैं लेकिन कई ऐसे भी हैं, जो किराएदार हैं। हरेक इमारत में बाथरूम, पाइप से पानी का कनेक्शन और लिफ्ट का होना – यहाँ रहने आने वालों में से अधिकांश के लिए आकर्षण की वजह थे, लेकिन सच्चाई यह है कि बुनियादी सुविधाओं से जुड़ी हुई अधिकतर समस्याएँ बरकरार हैं। इमारतों के बीच की गलियों में सालों पुराना कचरे का ढेर लगा हुआ है, जल निकासी के क्षतिग्रस्त पाइपों से निकलकर गन्दा पानी सड़कों पर लगातार बहता रहता है, और गली की बत्तियों का क्षतिग्रस्त होकर बन्द हो जाना आम बात है। कम्युनिटी डिज़ाइन एजेंसी द्वारा एक पुनरुद्धार परियोजना के

चित्र-2: *गोवंडी इलाके में स्थित नटवर पारेख कम्पाउण्ड में इमारतों के बीच की गलियों में कचरे का ढेर।*

तहत इनमें से ज़्यादातर समस्याओं के समाधान की दिशा में काम किया जा रहा है। यह संस्था 2016 से इस जगह पर काम कर रही है। इस इलाके की समस्याओं के समाधान के लिए यहाँ के निवासियों के साथ मिलकर की गई पहलों में से एक, बच्चों के लिए 'किताब महल' नाम के एक पुस्तकालय की स्थापना है। पुस्तकालय की परिकल्पना समुदाय की भागीदारी को बढ़ाने के लिए एक उत्प्रेरक के तौर पर और बच्चों के लिए सीखने की एक जगह निर्मित करने के उद्देश्य से की गई, खासकर महामारी के दौरान, जब उनके सँकरे घरों में ऑनलाइन सीखना मुश्किल होता था।

किताब महल में मैंने नगरपालिका के और निजी स्कूलों में पढ़ने वाले 8 दलित बच्चों और 5 मुस्लिम बच्चों, यानी कुल 13 बच्चों के साथ लेखन और कला से सम्बन्धित कार्यशाला आयोजित की। कार्यशाला में आनेवाले मुस्लिम बच्चे अंसारी जाति के थे, जिसे अन्य पिछड़ा वर्ग माना जाता है। इनमें से दो बच्चे स्कूल नहीं जाते थे, क्योंकि उनके परिवार महामारी के दौरान एनपीसी में आए थे और उनके माता-पिता को उनके पिछले नगरपालिका स्कूल से स्थानान्तरण प्रमाणपत्र अब तक नहीं मिला था। कचरा बीनकर दिहाड़ी मज़दूरी करने की वजह से माता-पिता के लिए स्थानान्तरण प्रमाणपत्र हासिल करने के लिए और अधिक कोशिश करने का समय नहीं था। नतीजतन, इस कार्यशाला तक वे दोनों लड़के स्कूल में नामांकित नहीं हुए थे।

धर्म, जाति और वर्ग के अनुभव

S और K, दो लड़कियाँ जिनकी कविताएँ इस निबन्ध का केन्द्र-बिन्दु हैं, 14 साल की हैं और जिस वक्त यह कार्यशाला आयोजित हुई, उस वक्त उन्होंने नगरपालिका के स्कूलों में आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई पूरी ही की थी। दोनों को अपने स्कूल पसन्द थे, हालाँकि, उन्होंने बताया कि महामारी के दौरान दो साल की ऑनलाइन पढ़ाई उनके लिए मुश्किल थी और उस दौरान वे बहुत कम सीख पाई थीं। उनका कम सीख पाना, उनके लिखने के कौशलों में नज़र आ रहा था - उन्होंने सरल-से शब्दों को लिखने के लिए भी मदद माँगी। S महाराष्ट्र के एक दलित परिवार से सम्बद्ध है और एनपीसी आने से पहले वह पोवई, मुम्बई में रहती थी।

K का परिवार उत्तर प्रदेश का रहनेवाला है, वह भी दलित है। महामारी के दौरान उसने कई महीने अपने गाँव में बिताए। वह मुम्बई तभी लौट सकी जब उसके पिता मुम्बई में अपना काम फिर से शुरू कर सके। दोनों के परिवार कई सालों से एनपीसी में रह रहे हैं।

दोनों ही लड़कियाँ शान्त और शर्मीली थीं, बोलने के लिए उन्हें बहुत प्रोत्साहित करना पड़ता था। दोनों नियमित पुस्तकालय आती थीं और S वॉलन्टियर के तौर पर छोटे बच्चों को कहानियाँ भी पढ़कर सुनाती थी। अलग से बातचीत के दौरान दोनों ने अपनी जातिगत पहचान के बारे में जागरूकता दर्शाई - उन्होंने 'निम्न जाति' या 'छोटी जाति' का होने की बात कही। K ने खुद के हिन्दू होने और हिन्दुओं में जातियों के होने की बात कही। "हम जायसवाल हैं..." उसने कहा, "मुझे ठीक-ठीक तो नहीं पता, लेकिन लोग हमें शायद चमार कहते हैं, है न? इस तरह इसे वे छोटी जाति, निम्न जाति कहते हैं।" जिस ढंग से उन्होंने जाति के बारे में बताया, उससे यह ज़ाहिर हो रहा था कि धर्म, जाति और वर्ग के अनुभव आपस में कितने घुले-मिले होते हैं।

"जाति का मतलब है, अलग-अलग धर्म, अलग-अलग समुदाय," S ने जारी रखा, "जाति का मतलब है अलग-अलग धर्म, जैसे जय भीम, मराठा, ईसाई। जय भीम और मराठा लोग बहुत अलग होते हैं। मतलब जय भीम और मराठा, दोनों अलग जातियाँ हैं। मराठा लोग हर किसी को स्वीकार नहीं करते, वे जय भीम वाले लोगों को भी स्वीकार नहीं करते।" K ने उन परिवारों के बारे में भी बताया, जो उससे अच्छे से बात करते थे और उनके बारे में भी जो उससे अच्छे से बात नहीं करते थे। लेकिन उसके अनुसार कुछ परिवारों के अच्छे से बात करने की वजह साझी पहचान की गलतफहमी थी। उसने बताया, "क्योंकि वे लोग भी

चित्र-3: *अम्बेडकर जयन्ती के दिन एनपीसी के लोग भरपूर जीवन्तता और ऊर्जा से जगह-जगह बुद्ध एवं अम्बेडकर की मूर्तियाँ रखकर उन्हें हार-मालाएँ पहनाते हैं और प्रार्थना करते हैं।*

हिन्दू हैं और यह सोचते हैं कि वे हमारे जैसे हैं।"

दोनों ही लड़कियाँ अम्बेडकर के बारे में जानती थीं। वे जानती थीं कि वे संविधान के निर्माता थे और संविधान ने ही जातिगत भेदभावों को खत्म किया। उनके समुदाय में उन्हें लगभग भगवान का दर्जा दिया गया था और उनके जन्मदिन पर औपचारिक ढंग से पूजा वगैरह की जाती थी। मैंने पाया कि 14 अप्रैल के दिन अम्बेडकर जयन्ती के लिए एनपीसी जीवन्तता और ऊर्जा से भरपूर है – सजावटी बत्तियाँ और पोस्टर लगाए गए हैं और जगह-जगह बुद्ध और अम्बेडकर की मूर्तियाँ रखकर उन्हें हार-मालाएँ पहनाई गई हैं। दलित प्रतिरोध को दर्शाने के लिए लोग बत्तियों से सजे हुए नीले रंग के ट्रकों पर सवार होकर नज़दीक के इलाकों में जाते हैं। नीला रंग दलितों के प्रतिरोध को दर्शाता है। ट्रकों पर लाउडस्पीकर लगाकर अम्बेडकर और दलितों की एकता के बारे में जाने-माने मराठी गाने बजते रहते हैं और लोग एकसाथ मिलकर नाचते हैं। मुम्बई के पास के इलाके चेम्बूर में अम्बेडकर गार्डन में लगाई गई अम्बेडकर की प्रतिमा को सम्मान प्रदर्शित करने के इन्तज़ार में लोगों की लम्बी लाइनें लगी हुई हैं। एनपीसी में रहने वाले परिवार वहाँ और शिवाजी पार्क जाते हैं, इन दोनों ही जगहों पर एक विशाल उत्सव आयोजित किया जाता है। S ने बताया कि बहुत-से अन्य लोगों की तरह ही वह भी 14 अप्रैल के दिन नीले और सफेद रंग के कपड़े पहनती है और

इस खास मौके पर उसके घर में खीर बनती है। K मुझे एनपीसी की इमारतों के बीच चौराहे पर स्थित अम्बेडकर की प्रतिमा के पास ले गई और उसने वहाँ कुछ इस अन्दाज़ में प्रार्थना की, जैसे कोई मन्दिर में करता है। "आज इनका जन्मदिन है और इन्होंने ही हमारे भारत के लिए संविधान लिखा। और धर्म, खासकर हमारे हिन्दू धर्म में कई जातियाँ हैं, जिन्हें हर कोई अस्पृश्य मानता है और इसी वजह से बाबासाहेब ने संविधान लिखा," उसने मुझसे कहा।

हालाँकि, संविधान और इसके द्वारा प्रदत्त अधिकारों के बारे में उनकी जानकारी अस्पष्ट थी। उदाहरण के लिए, S ने कहा, "इस देश में मुझे कुछ भी अधिकार नहीं है..." उसकी बात में बम्बई जैसे बड़े शहर में मौजूद वर्ग-असमानता साफ

मेरे लोग (K)

वह लोग जो इंडिया में रहते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह लोग जो पाकिस्तान के लिए लड़ते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह बच्चे जो मेरे साथ क्लास में बैठते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह टीचर जो क्लास के बच्चों से गुस्से से बात करते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह फेमिली के लोग जो मेरे साथ रहते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह मामा जो फेमिली से लड़ते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह नानी के गाँव के लोग जो कहते हैं -
"नदी में पानी ज़्यादा है, वहाँ मत जाओ।"
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह दुकानवाले जो लड़कियों को गन्दी नज़र से देखते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह लोग जो दुनिया के पर्यावरण को बचाना चाहते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह लोग जो धरम पर लड़ाई करते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

चित्र-4: *K द्वारा रची गई कविता।*

मेरे लोग (S)

वह दोस्त जो मुसीबत में साथ देते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह पड़ोसी जो छोटी-छोटी बात पर लड़ते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह फैमिली के लोग जिन्होंने मेरी बहन की शादी के लिए पैसे दिए थे
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह नानी जो मुझ पर शक करती है
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह किताब महल लाइब्रेरी के लोग जो मुझे हर चीज़ में चांस देते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह लोग जो ताज होटल के अन्दर जाते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह टीचर जो मेरी बात सुनते हैं और मुझे समझते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह पुलिसवाले जो अमीर का पैसा लेकर गरीब पर इलज़ाम लगाते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

वह पवई के चाल के लोग जो मेरे साथ 14 अप्रैल को अंबेडकर जयंती मनाते थे
क्या वह मेरे लोग हैं?
वह लोग जो मस्जिद तोड़ते हैं
क्या वह मेरे लोग हैं?

चित्र-5: *S द्वारा रचित कविता।*

झलक रही थी, जहाँ न सिर्फ उस जैसे लोगों की पहुँच से बाहर पाँच सितारा होटलों में वर्ग असमानताएँ साफ झलकती हैं, बल्कि एनपीसी के भी कुछ परिवार बाकी परिवारों से ज़्यादा सम्पन्न हैं। K ने बताया कि एनपीसी में रहनेवाले पैसेवाले लोगों ने अपने घरों में टाइलें लगवाई हैं और अब वे K के परिवार जैसे अपने घरों में टाइलें न लगा पानेवाले परिवारों के साथ घुलना-मिलना पसन्द नहीं करते। उसने कई ऐसे मुस्लिम परिवारों के बारे में भी बताया जिनको उनके बच्चों का K से बातचीत करना रास नहीं आता था। इसके बावजूद S ने मुसलमानों से काफी नज़दीकी जताई, "मुझे मुसलमान लोग पसन्द हैं... क्योंकि

मैंने उनके साथ नमाज़ पढ़ी है... मुझे यह जाति पसन्द है। क्योंकि मैं उनके साथ रह चुकी हूँ न।" उसने बताया कि उसकी सबसे अच्छी सहेली सहित अन्य मुसलमानों के साथ उसके घनिष्ठ सम्पर्क से उसे यह समझने में मदद मिली कि जब अज़ान पर प्रतिबन्ध लगाने या हिजाब पहनने वाली लड़कियों को स्कूल में प्रवेश न देने की मांग की जाती है तो वे कैसा महसूस करते हैं। "यह ठीक नहीं," उसने कहा।

कविताएँ

इस सन्दर्भ में K और S द्वारा लिखी गई कविताएँ भाईचारे के विचार पर प्रतिक्रिया स्वरूप उभरी थीं। भाईचारे के विचार पर हमने *अपनापन* नाम से चर्चा की थी। अपनापन दूसरों के साथ एक होने की भावना है, जिसमें कोई व्यक्ति एक व्यक्ति के तौर पर और दूसरों के साथ, दोनों ही तरह से अपनेपन की भावना महसूस करे। कविताएँ S और K के निजी और सार्वजनिक जीवन के रोज़मर्रा के दृश्यों का एक चित्र प्रस्तुत करती हैं। ये संक्षिप्त विवरण हमें समुदाय और अपनेपन की पारम्परिक रूप से स्वीकृत धारणाओं पर सोचने के लिए आमंत्रित करते हैं।

लिखने के इस अनुभव का बच्चों के लिए क्या अर्थ हो सकता है? इस प्रक्रिया में वयस्क की क्या भूमिका है? और बच्चों की बात सुनकर हम क्या सीख सकते हैं? इन सवालों पर इस लेख के अगले भाग में विचार किया गया है।

(जारी....)

समीना मिश्रा: नई दिल्ली स्थित एक वृत्तचित्र फिल्म निर्माता, लेखक और शिक्षक हैं, जिनकी बच्चों से सम्बन्धित मीडिया में विशेष रुचि है। वे भारत में अपने पलने-बढ़ने के अनुभवों को दर्शाने के लिए अपने काम में बचपन, पहचान और शिक्षा के लेंस का इस्तेमाल करती हैं।

यह लेख TESF India द्वारा समर्थित उनके रिसर्च प्रोजेक्ट 'हम हिन्दुस्तानी' पर आधारित है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: शहनाज: कुछ सालों तक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत गैर सरकारी संगठनों के साथ काम करने के बाद, साल 2019 से कॉपी एडिटर और अनुवादक के तौर पर स्वतंत्र रूप से काम कर रही हैं। समाज में मौजूद विभिन्न तरह की असमानताओं से जुड़े विविध पहलुओं को समझने में दिलचस्पी रखती हैं। कानपुर में रहती हैं।

सभी फोटो: समीना मिश्रा।

यह लेख *टीचर प्लस* पत्रिका के अंक जनवरी, 2023 से साभार।

समय, दूरी और बच्चे

प्रकाश कान्त

गणित की कक्षाओं में बच्चे समय और दूरी के सवाल हल करते रहे हैं। विभिन्न दूरियों को पार करने में लगने वाला समय और अलग-अलग अवधियों में पार की जाने वाली दूरियाँ! एक ट्रेन इतने किलोमीटर प्रति घण्टे की चाल से चलने पर इतने-इतने किलोमीटर चलने के लिए कितना समय लेगी? या एक बस इतने-इतने किलोमीटर पहुँचने में इतना समय लेती है तो उसकी प्रति घण्टा गति बताओ! इस तरह के प्रश्नों में निहित समय और दूरी की अवधारणाएँ तो बच्चे सामान्यतः समझ लेते हैं लेकिन जब इन चीज़ों को ज़्यादा बड़ी लम्बाई के पैमाने में फैलाया जाता है तब उन्हें उलझन होने लगती है। मेरा अपना अनुभव है कि खासकर छठी-सातवीं क्लास के बच्चे हज़ार तक की बात तो ठोस रूप से समझ लेते हैं। लाख तक का अनुमान भी कर लेते हैं लेकिन इससे आगे मतलब करोड़, दस करोड़ वगैरह उनकी कल्पना के बाहर होने लगते हैं। तब ये संख्याएँ उनके लिए सिर्फ संख्याभर रह जाती हैं। अरब, खरब वगैरह यह सब! आप कितने ही अरब, कितने ही खरब वगैरह की

बात कीजिए, उनका मीटर वहीं रुका रहेगा।

इसीलिए, जब उनसे कहा जाता है कि पृथ्वी की उम्र 454 करोड़ वर्ष है या सौर-मण्डल का उद्भव करीब 46 हज़ार लाख वर्ष पहले हुआ था तो यह सब सुनकर उनके दिमाग में इस विशाल समयावधि का चित्र स्पष्ट नहीं होता। इतिहास के समय से भूगोल का समय कहीं ज़्यादा बड़ा होता है। बल्कि कहा जाना चाहिए कि भूगोल के अन्तराल में इतिहास का समय जो कि मूलतः मनुष्य का समय है, वह एक बहुत ही छोटा हिस्सा है। ऐसे में जब लाखों साल पहले के हवाले देकर पृथ्वी और मनुष्य के विकास की बात की जाती है तो बच्चों को अपने दिमाग में इसका चित्र बनाने में मुश्किल होती है। वे इसे 'बहुत ज़्यादा पुराने' जैसे जुमले में बदलकर अपना काम चला लेते हैं। दूरी के साथ भी उन्हें यही दिक्कत होती है। ग्रहों की आपसी दूरियों और सूर्य से उनकी अलग-अलग दूरियों को लेकर। प्रकाश वर्ष के आधार पर बताई जाने वाली दूरियाँ तो उनकी तो छोड़ो, किसी की भी कल्पना के और भी बाहर होती हैं। ऐसे में सौर परिवार के चित्र में ग्रहों की सूर्य और एक-दूसरे से दूरियों को 'पास', 'ज़्यादा पास', 'दूर', 'ज़्यादा दूर' वगैरह जैसी शब्दावली में सीमित कर समझने की कोशिश होती है। मुझे लगता है, इस स्तर पर बच्चों से ज़्यादा उम्मीद की भी नहीं जानी चाहिए। संख्याएँ अपनी जगह हैं और उनके पीछे मौजूद अर्थ, उसका बोध अपनी जगह। यूँ भी, समय या दूरी के मामले में संख्याओं के स्थूल बोध तक सीमित रहकर भी उनका काम चल जाता है। भले ही, गणित में वे दशमलव और बीज गणित में संख्याओं के प्रातिनिधिक रूपों तक की कसरत करते रहते हों! वह सिर्फ संख्याओं की कसरत है। मैं संख्याओं के भीतर मौजूद उनके बोध और उसे महसूस करने की बात करना चाह रहा हूँ।

इतिहास में ईसा पूर्व और ईसा पश्चात् को लेकर भी झंझट रहती है। भूगोल में इसकी ज़्यादा ज़रूरत नहीं पड़ती। वहाँ समय सैकड़ों नहीं बल्कि हज़ारों, लाखों साल पुराना होता है। लेकिन इतिहास में तो गुप्त काल को फलाँगते ही ईसा पूर्व का झमेला शुरू हो जाता है। सिन्धु घाटी की सभ्यता, बुद्ध, महावीर, अजातशत्रु, अशोक की बात करते ही समय ईसा पूर्व का बन जाता है। सामान्यतः बच्चे इसे सुन-पढ़ लेते हैं। और तमाम बातों की तरह सुने-पढ़े को मान भी लेते हैं। लेकिन कभी-कभी किसी के दिमाग में कोई नई हलचल भी होने लगती है।

अप्रैल की एक दोपहर और टॉवेल लपेटी दस्तक!

वह शायद सन् 1982 का अप्रैल था। स्कूल सुबह के हो चुके थे। मैं

और संजीवनी मानकुण्ड-अरलावदा के अपने-अपने स्कूलों से लौट चुके थे। दोपहर थी। तपने भी लगी थी। उस साल शायद थोड़ी जल्दी और ज़्यादा तपने लगी थी। हम लोग अरलावदा में रामदेवरा चौक से लगे हीरू भैया के घर में किराए से रहते थे जिसकी अगली पूरी दीवार पटियों की थी। गली सूनी थी। मैं अखबार देख रहा था। उसी वक्त दरवाज़े पर दस्तक हुई।

"सर, मैं डालाराम!" मेरे पूछने पर जवाब आया। मैंने खिड़की से झाँककर देखा। टॉवेल लपेटे बनियान पहना एक साँवला-सा लड़का। स्थानीय मिडिल स्कूल का छठी का छात्र। मैंने दरवाज़ा खोला। उसे अन्दर बुलाया। वह हिचकिचाया। वह शायद दरवाज़े से ही लौट जाने की तैयारी से आया था।

मेरे दो बार कहने पर भीतर आया। बैठने को कहने पर बैठा नहीं। उसके हाथ में मोटी-सी किताब थी। ध्यान से देखने पर जाना कि सामाजिक अध्ययन है – इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र। तीनों की संयुक्त पुस्तक। वह अरलावदा स्कूल का छात्र था और मैं मानकुण्ड स्कूल में था। और वह उस वक्त मेरे सामने था, एक सवाल के साथ! "सर, इस पाठ में लिखा है कि गौतम बुद्ध का जन्म सन् 563 ई.पू. में हुआ और मृत्यु 483 ई.पू. में! किसी भी व्यक्ति की मृत्यु पिछली तारीख में कैसे हो सकती है?"

उसकी आवाज़ में और चेहरे पर

जिज्ञासा थी। मैं कुछ पल बिना पलक झपकाए उसका साँवला चेहरा देखता रहा। मैं वाकई हैरान था कि छठी क्लास के लड़के के दिमाग में आखिर यह सवाल आया कैसे! मुझे हमेशा से लगता रहा था कि पूछे जाने वाले सवालों के आधार पर भी पूछने वाले व्यक्ति के बारे में बहुत कुछ जाना-समझा जा सकता है। कई बार जवाबों से ज़्यादा महत्वपूर्ण होते हैं सवाल। गैरमामूली सवाल चौंकाते हैं। भले ही उनके जवाब हों या न हों! कभी-कभी जवाबों का होना शायद उतना ज़रूरी होता भी नहीं। बहरहाल, उस वक्त मैं सोच रहा था कि उसके भीतर इस तरह का सवाल पैदा हुआ कैसे! न सिर्फ पैदा हुआ बल्कि अपने उस सवाल का जवाब जानने, गर्मी की भरी दोपहर वह अपने घर से मेरे यहाँ पूछने भी आया। मैं उसका चेहरा देख रहा था।

दरअसल, कई साल पढ़ाने के दौरान कभी किसी ने ऐसा सवाल पूछा नहीं था। सवाल की शक्ल में कभी इस तरह की बात दिमाग में आई नहीं! हकीकत तो यह थी कि अपनी पढ़ाई के दौरान खुद मुझे इस तरह के सवाल ने नहीं कुरेदा। मुझे क्या बल्कि मेरे साथ या आगे-पीछे पढ़ रहे किसी और साथी को भी नहीं परेशान किया। किसी को भी इस बात में कतई कुछ अजीब नहीं लगा कि कोई आदमी, मान लीजिए ई.पू. सन् 78 में पैदा हो और वह मरे सन् 18 ई.पू. में! हो सकता है, या होता है, या होता होगा, ऐसा ही कुछ!! यही रवैया था हम लोगों का। एक तरह का सहज स्वीकार। हमारी पूरी स्कूली शिक्षा, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें वगैरह सभी कुछ एक विराट 'सहज स्वीकार' पर ही खड़े हैं। शिक्षा का सारा कारोबार इस तरह के सहज स्वीकार के भरोसे ही चल रहा है। पाठ्यपुस्तकों में लिखा है, कक्षा में शिक्षक द्वारा बताया गया है बस, इतना काफी है। इतने-भर से काम खत्म! कभी-कभी लगता है कि इन सबके नीचे अगर बच्चे अपने-अपने सवालों के डायनामाइट लगा सकें तो क्या हो! गनीमत थी कि वे ऐसा नहीं करते या ऐसा नहीं कर पाते। और हमारा काम आसानी-से चलता रहता है।

उस वक्त उस बच्चे के चेहरे पर जो सवाल था, उसकी गूँज में मैं हैरान था।

"तुम सिर्फ यही पूछने के लिए भरी दोपहर में आए हो?"

"जी सर।"

"तुम्हारे पिता क्या करते हैं?"

"वे पीडब्ल्यूडी की गैंग में सड़क मज़दूर हैं। सड़क मरम्मत का काम करते हैं। मेरे नाना भी यही करते हैं। इसी गाँव में रहते हैं।" ये बताने के बाद उसकी आँखों में उसका सवाल फिर से झिलमिलाने लगा था।

"ऐसा इसलिए बेटा कि ईसा पूर्व में सन् उलटे चलते हैं।" यह मेरा

जवाब था। हालाँकि, कहने के बाद ही लगा था कि यह जवाब ज़रूर है लेकिन उस बच्चे के हिसाब से कोई बहुत ठीक-सा जवाब नहीं है। उसका चेहरा भी इस बात की तस्दीक कर रहा था। एक पल के लिए समझ में नहीं आया कि और किस तरह से बताया जाना चाहिए, या जवाब को और किस तरह से खोला जाना चाहिए। जवाब को डीकोड करना! जो कुछ कहा गया था, वह एक तरह से सूत्र था। सूत्र कहे-बोले जा सकते हैं, रटे जा सकते हैं। लेकिन उनके पीछे की अवधारणा समझने के लिए उनके अर्थों को खोलना ज़रूरी होता है। शिक्षक के लिए एक चुनौती यह भी होती है। बच्चे की समझ के स्तर तक उतरकर अर्थ को इस तरह खोलना कि बिना सपाट हुए बात समझ में आ सके। किताबें यह काम नहीं करतीं। उनमें सब कुछ एक तरह से मानकीकृत और लगभग सूत्रात्मक होता है। ठस्सम-ठस्स भरा हुआ। परिभाषानुमा। और परिभाषाएँ आम तौर पर खुली नहीं होतीं। उन्हें खोलना पड़ता है।

बहरहाल, मेरे सामने अपने ही जवाब को खोलने की चुनौती थी। पढ़ाने के दौरान इस तरह की चुनौतियाँ अचानक और अक्सर आया करती हैं। और अमूमन उनसे उसी वक्त निपटना भी पड़ता है। अगर बच्चों की जिज्ञासा के तेज़ उफान का सही इस्तेमाल करना हो तो!

"बैठो!" मैंने ज़ोर देकर उसे अपने तख्त पर साथ बिठाया। उसके हाथ की किताब एक तरफ रख दी। बताया कि बाईं ओर संख्याएँ किस तरह से उल्टी चलती हैं! संख्याएँ तो उल्टी चलती हैं लेकिन समय सीधा चलता है। इसलिए ईसा पूर्व सन् 80 या ऐसे ही किसी सन् में पैदा हुआ व्यक्ति उससे छोटे या कम लगने वाले सन् मतलब 15-20 में मरेगा। शून्य मतलब एक तरह से ईस्वी सन् शुरू होने के आसपास का वक्त!

मैं अपनी तरफ से सब कुछ कह चुका था। अर्थ को जितना खोल सकता था, खोल चुका था। अब मेरे पास और ज़्यादा कुछ कहने-बताने को नहीं था। अपने-आप में यह एक निरीहता का क्षण था। शिक्षकीय काम में कई बार निरीहता के ऐसे क्षण भी आते रहते हैं, जहाँ पहुँचने के बाद शिक्षक को लगता है कि वह अब आगे कुछ नहीं कर सकता! सिवाय दोहराने या लौटने के! एक तरह का *डेड एंड*/ अन्धी खाई। हो सकता है कि इस खाई को फलाँगने पर कुछ नया चमकता हुआ मिल जाता हो! लेकिन बहुत कम ही इस तरह से खाई को फलाँगना हो पाता है!

आया समझ में?!

तो इस वक्त मेरे लिए भी निरीहता का क्षण या बिन्दु आ चुका था। जहाँ पहुँचकर शिक्षक छात्रों से अक्सर पूछते रहते हैं, "आया समझ में?!"

वैसे यह 'आया समझ में' शिक्षकों का अमूमन एक तरह का तकिया कलाम हुआ करता है जिसे हर दूसरे-चौथे वाक्य के बाद वे दोहराते रहते हैं। बिना ज़्यादा कुछ समझाए! जिसका पूरी क्लास सामूहिक नारे की तरह जवाब दिया करती है – 'जी सर!', 'जी गुरुजी!' जबकि न तो गुरुजी ने कुछ समझाया होता है और न छात्रों ने कुछ समझा होता है! बस एक रस्म होती है जो चलती रहती है। बच्चों के जवाब 'जी सर' के बाद शिक्षक जानने की कोशिश भी नहीं करते कि हकीकत में समझ में आया भी है या नहीं! अगर आया है, तो क्या और कितना!!

दरअसल, शिक्षक मानकर चलता है कि उसने तो समझा दिया और बच्चों को समझ में आ भी गया होगा! कभी यह शिक्षक के मन का चोर भी होता है। वह ऊपर से मान लेता है कि उसने समझा दिया है। जबकि उसके भीतर कहीं यह एहसास होता है कि न तो उसने समझाने जैसा विशेष कुछ किया है और न ही बच्चों को पूरी तरह से समझ में ही आया है। ऐसे में ही, उसके मुँह से अचानक निकलता है 'आया समझ में?!' जिसका हमेशा जवाब स्वीकृति में मिलता है। आदतन। बच्चों को आदत हो चुकी होती है कि इस सवाल का जवाब उन्हें स्वीकृति में ही देना है। हमारे स्कूलों का रूटीन ढाँचा यही बन चुका है। मैं खुद शुरू में यही करता रहा था। फिर धीरे-धीरे समझ में आया कि यह मेरी निजी असफलता है। अक्षमता भी। जो मुझे पूछना पड़ रहा है कि उन्हें समझ में आया अथवा

नहीं! जबकि होना तो यह चाहिए कि अगर बच्चों को समझ में आ गया है तो वह उनके चेहरे पर नज़र आए और नहीं आया हो तो वे खुद कहें!

बहरहाल, उस वक्त मैंने उस बच्चे से भी पूछना चाहा कि उसके सवाल का जवाब ठीक से मिला या नहीं! लेकिन, रोक लिया। सोचने लगा कि उस डेड एंड पर मैं और क्या कर सकता हूँ! एक बार बच्चे का चेहरा देखा। वहाँ कुछ देर हल्का-सा धुँधलका फैला रहा। बच्चा कागज़ पर मेरी बनाई समय-रेखा को देखता रहा। फिर धुँधलके में थोड़ी-सी रोशनी फूटी। धुँधलका छटा। मुस्कराहट उभरी। मुस्कराहट जिसमें खुशी थी। जान लेने की खुशी!

"अच्छा, ऐसा है, सर!" मेरी ओर देखकर कहा। अब पूरा चेहरा मुस्कराहट में नहाया था। उसने अपनी किताब के साथ संख्या-रेखा वाला कागज़ भी उठा लिया और निकल गया। पहली बार मैंने जाना कि सही तरह से जान लेने का आनन्द क्या होता है! हालाँकि, इस तरह के आनन्द के क्षण छात्र जीवन में कभी-कभी ही आते हैं। मतलब, जानने का वह बिन्दु कम ही बार छुआ जा पाता है जहाँ पहुँचकर वैसा आनन्द महसूस होता है। बहुत सम्भव है कि मध्यकाल के सन्त-कवि ज्ञान के इसी आनन्द की बात करते रहे हों। आध्यात्मिक आनन्द! उनके लिए ज्ञान का स्वरूप ही आध्यात्मिक था। इसलिए उससे मिलने वाला आनन्द भी आध्यात्मिक था! यह लगभग किसी परिकल्पना जैसा प्रश्न हो सकता है, अव्यावहारिक एवं अस्वाभाविक भी कि हम अपने स्कूली ढाँचे में सीखने-सिखाने को आखिर इस तरह से आनन्ददायक क्यों नहीं बना पाए, या ऐसा शैक्षणिक वातावरण क्यों नहीं निर्मित कर पाए कि बच्चों के जीवन में आनन्द के ऐसे क्षण लगातार आते रहें। वहाँ हमेशा सूखा नहीं पड़ा रहता। बहरहाल, बच्चा चला गया। मैं उसके द्वारा अनुभूत आनन्द के उजाले में नहाता कुछ देर चुपचाप बैठा रहा।

किस्सा मुख्तसर, बच्चों में समय-बोध पैदा करने के लिए मैंने कोशिश की कि ईसा के पूर्व के समय की गणना के ढंग को उनके सामने पहले साफ किया जाए! भले ही उन्हें वह गुत्थी न लगती हो!

एक के बाद दो कैसे?

समय की तरह बच्चों के सामने लम्बी दूरियों के साथ भी यही दिक्कत रहती है। हज़ार वगैरह किलोमीटर की दूरियों को तो वे समझ लेते हैं लेकिन इसके आगे के साथ उलझ जाते हैं। गणित में भले ही लाखों-करोड़ों के सवाल हल कर लेते हों! अजीब भी लगता है कि बिना उन संख्याओं के असली अर्थ समझे उनसे जुड़े सवाल कैसे हल किए जा सकते हैं! क्या सिर्फ यांत्रिक अभ्यास के

चलते! मैंने अपने कुछेक शिक्षक साथियों से भी इस बारे में चर्चा की थी। उनका कहना था कि सीखते वक्त कतई ज़रूरी नहीं होता कि बच्चों के लिए सभी कुछ साफ भी हो! वे सीखने की प्रक्रिया में धीरे-धीरे पिछली बातों को समझते जाते हैं। सारी बातों को एकसाथ और तत्काल समझ लिए जाने की उनसे उम्मीद नहीं की जा सकती। ये थे कन्हैयालाल सूर्या! गणित और विज्ञान के शिक्षक। जैसा पहले बताया, होशंगाबाद विज्ञान से जुड़े हुए। मानकुण्ड स्कूल में जब से होशंगाबाद विज्ञान या बाल विज्ञान कार्यक्रम शुरू हुआ तभी से इससे जुड़े हुए थे। इस कार्यक्रम के बन्द होने तक इससे जुड़े रहे। ठीक नज़दीक के अरलावदा स्कूल के गणित-विज्ञान शिक्षक राधेश्याम त्रिवेदी की तरह। दोनों महूखेड़ा से आते थे और दोनों ने ही इस विज्ञान कार्यक्रम के सारे प्रशिक्षण लिए थे।

बहरहाल, सूर्याजी ने उस वक्त अपनी कही बात को ज़्यादा साफ करने के लिए एक उदाहरण देते हुए कहा था कि एक के बाद दो आता है, यह तय है लेकिन नया गणित यह भी कहता है कि एक और दो के बीच अनन्त संख्याएँ हैं। ऐसे में सवाल यह पैदा हो सकता है कि जब एक के बाद आने वाली ये अनन्त संख्याएँ खत्म होंगी तभी दो आएगा न! लेकिन संख्याएँ चूँकि अनन्त हैं इसलिए कभी खत्म तो होंगी नहीं। ऐसे में दो कब और कैसे आएगा! लेकिन दो आता है। बल्कि सिर्फ दो ही नहीं, अगली सारी संख्याएँ आती चली जाती हैं, इसी क्रम में! और बच्चे इन दोनों बातों में किसी तरह का अन्तर्विरोध नहीं देखते!

सूर्याजी की बात का सिरा पकड़ मुझे अपनी गुत्थी सुलझाने में थोड़ी-सी मदद मिली। लगा कि प्राथमिक रूप में कभी-कभी सिर्फ जानकारियों को बच्चों तक पहुँचाना शायद उतना गलत नहीं है। शायद समझ बनने का रास्ता भी इसी में से आगे निकल सकता है।

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – *अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला*; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – *शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश*, संस्मरण – *एक शहर देवास, कवि नईम और मैं*, और फिल्म पर एक पुस्तक – *हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश* प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

सभी चित्र: उर्वी सावंत: सृष्टि इंस्टिट्यूट ऑफ आर्ट एण्ड डिज़ाइन टेक्नोलॉजी, बैंगलोर से पढ़ाई। चित्रकार, विज़ुअल कलाकार और डिज़ाइनर हैं।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।

दाईं सूँड के गणेशजी

जयंत विष्णु नारलीकर

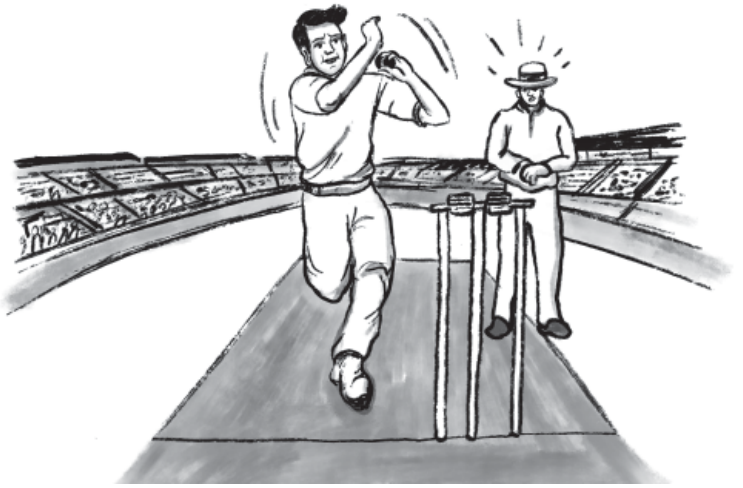

21 दिसम्बर, सन् 2004

आज करीब पन्द्रह वर्षों के पश्चात् मैं क्रिकेट का मैच देखने ग्राउण्ड पर गया था। सच पूछें तो क्रिकेट मेरा प्रिय खेल है। हमारी कॉलोनी के क्रिकेट क्लब में छुट्टी के दिन मैं अवश्य खेलने जाता हूँ। यदि समय मिलता है तो टी.वी. पर मैच देखना भी पसन्द है मुझे, खासकर पाँच दिवसीय टेस्ट मैच देखने को मेरा मन करता है। सारा दिन मैदान में जाकर क्रिकेट देखने का मेरा शौक पूरा नहीं हो पाता क्योंकि मैं म्यूज़ियम क्यूरेटर का काम करता हूँ। हाँ, समय मिलने पर मैं वीडियो रिकॉर्डर पर क्रिकेट मैच के महत्वपूर्ण अंश अवश्य देख लेता हूँ।

परन्तु आज की बात और है। मेरे बचपन के दोस्त प्रमोद रांगणेकर के खेल का आज अन्तिम दिन है। इसके बाद वह क्रिकेट से रिटायर होने वाला है। उसने यह कहकर मुझे सीज़न टिकट भिजवाया था कि एकाध दिन तो मैच देखने अवश्य आ जाना। उसके आत्मीय निमंत्रण को स्वीकारना ज़रूरी था मेरे लिए। प्रमोद

बॉलर था इसलिए मैंने भारत की फील्डिंग वाला दिन चुना।

आज मैच का दूसरा दिन था। पहले दिन भारत ने पहली पारी में सिर्फ 308 रन बनाए थे और उसके सारे खिलाड़ी आउट हो गए थे। इस शृंखला का यह अन्तिम और निर्णायक मैच था। क्रिकेट के सभी भारतीय शौकीनों को यकीन था कि इंग्लैंड पर विजय प्राप्त करने का मौका भारतीय खिलाड़ी हाथ से जाने नहीं देंगे। टॉस जीतकर भारत पहले बल्लेबाज़ी कर पाँच-छः सौ रन ज़रूर बना लेगा। भारत के बॉलरों की बॉलिंग का, इंग्लैंड के खिलाड़ियों को बखूबी अन्दाज़ा हो गया था - उनकी अच्छी प्रैक्टिस हो गई थी। क्रिकेट के मँजे हुए विशेषज्ञों का तो यह मत था कि प्रमोद रांगणेकर के साथ कुछ अन्य मौजूदा बॉलरों को 'ड्रॉप' कर देना चाहिए। परन्तु, इस निर्णायक मैच में चयन बोर्ड नए बॉलरों को आज़माने का जोखिम लेने को तैयार न था। विशेषज्ञ अब यही कह रहे थे कि इंग्लैंड की टीम पहली पारी के 308 रनों को आसानी-से पार कर लेगी।

एम.सी.सी. की बल्लेबाज़ी आरम्भ हुई। सलामी जोड़ी संयम से क्रीज़ पर डटी रही और पहले एक घण्टे के खेल में उन्होंने बिना कोई विकेट खोए 40 रन बना लिए। ड्रिंक्स के पश्चात् कैप्टन भण्डारी ने, रांगणेकर को बॉलिंग करने को कहा। उसका यह आखिरी मैच होने की वजह से, दर्शकों ने तालियों से उसका स्वागत किया। किसे पता था कि आगे क्या होने वाला है?

रांगणेकर का प्रस्ताव सुन अम्पायर कालिया चकित रह गए। हुआ यूँ कि रांगणेकर हमेशा 'राइट आर्म ओवर द विकेट' बॉलिंग करता था और उसी हिसाब से अम्पायर बल्लेबाज़ को हिदायत देने ही वाले थे कि रांगणेकर ने उनसे कहा कि "मैं लेफ्ट आर्म ओवर द विकेट बॉलिंग करने वाला हूँ।" और उसी हिसाब से फील्डिंग की पुनर्रचना करवाई।

कप्तान भण्डारी को भी इस बात की कल्पना न थी कि रांगणेकर बाँए हाथ से बॉलिंग करेगा। उसे भी आश्चर्य हुआ। इससे पहले रांगणेकर ने कभी भी बाएँ हाथ से बॉलिंग नहीं की थी। अतः इस महत्वपूर्ण घड़ी में उसका यह निर्णय कप्तान भण्डारी को जँचा नहीं। परन्तु, किसी खिलाड़ी को बॉलिंग देने के पश्चात् उसे मना नहीं किया जा सकता! इसके अलावा यह रांगणेकर के जीवन का अन्तिम मैच था। 'अभी एकाध ओवर डालने में कोई हर्ज़ नहीं,' मन ही मन ऐसा निर्णय कर भण्डारी ने उसे 'शुरु करो' का संकेत किया और वहीं से उस अभूतपूर्व घटनाचक्र का आरम्भ हो गया।

जिस खिलाड़ी को दाहिने हाथ से बॉलिंग करने का अभ्यास है, वह एकाएक बाएँ हाथ से बॉलिंग कैसे

कर सकेगा? ऐसी बॉलिंग सटीक एवं प्रभावशाली कैसे होगी भला? सभी इसी उलझन में फँसे थे। रेडियो तथा टी.वी. के कमेण्टेटर इसी बात को दोहरा रहे थे कि भारत को यह ओवर बड़ा महँगा पड़ेगा। यह चर्चा एवं अटकलें चल ही रही थीं कि रांगणेकर की पहली बॉल ने इंग्लैंड के खिलाड़ी की लेग स्टम्प उखाड़ दी। वह खिलाड़ी पैविलियन लौटते समय नए बल्लेबाज़ से बोला, "गेंद बड़े अनपेक्षित तरीके से आ रही है। सम्भल कर खेलो!" वह नया खिलाड़ी दो ही बॉल खेल पाया और तीसरी बॉल पर आउट हो गया। और रांगणेकर के महँगे साबित होने वाले ओवर की अन्तिम गेंद पर इंग्लैण्ड का कैप्टन हेडली भी पैविलियन की राह लौट गया।

रांगणेकर की दाहिने हाथ की गेंदबाज़ी का इंग्लैंड के खिलाड़ियों को बखूबी अनुभव था, परन्तु इस गेंदबाज़ी के आगे उनकी एक न चली। उनकी पहली पारी 78 रन पर तो दूसरी पारी सिर्फ 45 रनों पर सिमट गई। उनके एकमात्र बाएँ हाथ के बल्लेबाज़ जोंस ने कुछ जूझने की कोशिश की इसीलिए इतने रन बन पाए अन्यथा पारी इससे पहले ही सिमट गई होती। रांगणेकर की बॉलिंग का विश्लेषण तो अभूतपूर्व ही था।

पहली पारी: 15 ओवर, 5 मेडन, 20 रन और 10 विकेट।

दूसरी पारी: 10 ओवर, 3 मेडन, 15 रन और 10 विकेट।

यह मैच चायपान से पहले ही समाप्त हो गया। बधाई देने वाले तमाम प्रेक्षकों से बचने के लिए रांगणेकर को 'पुलिस एस्कॉर्ट' दिया गया। जब संवाददाताओं ने उसे घेरा तब यह कहते हुए कि "मैं बहुत थक गया हूँ.....कल मुलाकात होगी," वह मैदान से बाहर निकल गया और एक बन्द एम्बुलैंस में बैठकर नौ दो ग्यारह हो गया। एम्बुलैंस में सफेद झक कपड़े पहने एक व्यक्ति पहले से बैठा था जिसे संवाददाताओं ने अस्पष्ट-सा देखा था। उन्होंने पूछताछ की तो पता चला, वह कोई डॉक्टर था।

करीब एक हफ्ते रांगणेकर गायब था। भारतीय टीम, क्रिकेट कन्ट्रोल बोर्ड, पुलिस आदि सभी उसके ठौर-ठिकाने से अनभिज्ञ थे। एम्बुलैंस बेनाम थी जो शहर के किसी भी अस्पताल अथवा नर्सिंग होम से सम्बन्धित नहीं थी। परन्तु, किसी अज्ञात व्यक्ति ने एक सन्देश पुलिस तथा बड़े-बड़े अखबारों के पास भिजवाया था जिसमें रांगणेकर ने लिखा था,

"मैं सुरक्षित हूँ और 28 दिसम्बर के दिन मिलूँगा।"

इस दौरान क्रिकेट के तमाम शौकीन लोग, समीक्षक आदि उस अभूतपूर्व मैच की समीक्षा एवं विश्लेषण में जुट गए। 'इंडियन रोप

ट्रिक', 'जिम लेकर का सवाया', 'क्रिकेट या मेस्मेरिज़म' आदि शीर्षकों के अन्तर्गत रांगणेकर की बॉलिंग की खूब चर्चा हुई। उसकी गेंदबाज़ी को स्लो मोशन पर कई बार जाँचा गया। परन्तु क्रिकेट के जानकारों को 'थ्रोइंग' अथवा अन्य कोई भी दोष नज़र न आया। उसे हर पहलू से 'मँजा हुआ खिलाड़ी' ही पाया गया। परन्तु, सभी इस उलझन में पड़े थे कि रांगणेकर अचानक बाएँ हाथ से कैसे खेल पाया?

28 दिसम्बर को रांगणेकर एक पुलिस स्टेशन में जा पहुँचा। पिछले पूरे हफ्ते वह कहाँ था, उसे बिलकुल याद नहीं आ रहा था। इतना ही नहीं, उसे अपने बेजोड़ पराक्रम का भी ज्ञान न था। वैसे तो उसमें कोई शारीरिक दोष न था, और 21 दिसम्बर से पहले तथा 28 दिसम्बर के बाद का, उसे सब कुछ याद था। इतना ही नहीं, अपनी बाएँ हाथ की बॉलिंग की बात भी उसे हास्यास्पद ही लगी। इसी वजह से, उसके पराक्रम की गुत्थी सुलझ नहीं पाई और अफवाहों का बाज़ार गर्म हो गया।

21 दिसम्बर से 28 दिसम्बर के दौरान रांगणेकर के जीवन में क्या घटित हुआ होगा भला? जब मैंने सत्य को जाना तब समझ में आया कि कुछ बातें कितनी विचित्र और कितनी असाधारण हो सकती हैं।

* * *

5 फरवरी, 2005 का दिन मेरे लिए अविस्मरणीय सिद्ध हुआ। उस दिन सुबह आठ बजे, मेरे मित्र सँजू गोले

का फोन आया। करीब पाँच वर्षों बाद मैं उसकी आवाज़ सुन रहा था।

"प्रताप, आज रात मैं तुम्हें मिलने आ सकता हूँ क्या? नौ बजे के करीब? बहुत ज़रूरी काम है।"

"अवश्य आओ! खाना यहीं खा लेना। मैंने आग्रह किया। पर, यह तो बताओ कि आज मुझे कैसे याद किया?"

"प्रमोद के बारे में कुछ बात करनी है। और भी बहुत कुछ बताना है। पर यह सारी चर्चा 'गुप्त' रखनी है। और किसी को खाने पर मत बुलाना।"

"ठीक है, ठीक है! और कुछ?" मैंने मज़ाक में पूछा।

"हाँ! भाभी से कहना कि मुझे खाना खाने में काँटा-छुरी की ज़रूरत पड़ती है।" इतना कहकर सँजू ने फोन रख दिया।

सँजू, प्रमोद और मैं एक ही स्कूल में पढ़े। साथ-साथ बचपन बिताया। हम तीनों की तिकड़ी स्कूल में प्रसिद्ध थी। हम तीनों जिगरी दोस्त थे पर हमारे स्वभाव सर्वथा भिन्न थे। हमारी रुचि भी अलग-अलग विषयों में थी। मैं कोमलहृदय था और मुझे कलात्मक विषयों में रुचि थी। सँजू बिलकुल शान्त स्वभाव का, कम बोलने वाला लड़का था और उसे विज्ञान तथा गणित विषय अच्छे लगते थे। प्रमोद बड़ा ही हंसमुख और खेलकूद में गहरा रस लेने वाला था।

कॉलेज तक की पढ़ाई हमने साथ-साथ की। आगे चलकर प्रमोद ने बैंक में नौकरी कर ली और क्रिकेट में नाम चमकाया। मैंने एक विख्यात म्यूज़ियम में क्यूरेटर का काम सम्हाला। और सँजू? विज्ञान में उच्च शिक्षा प्राप्त कर डिफेन्स की प्रयोगशाला में काम करने लगा और वहाँ के गोपनीय रिसर्च प्रोजेक्ट में वह इस कदर खो गया कि एक ही शहर में रहते हुए, हम दोनों की मुलाकात पिछले कई वर्षों से नहीं हो पाई थी।

उसके शब्दों का मान रखने की मेरी पुरानी आदत थी, सो मैंने उसके आदेश का पूरा-पूरा पालन किया। किसी और को खाने पर बुलाने के मोह को मैंने टाला। मेरी पत्नी ने विदेशी पद्धति का भोजन बनाया (जिसे काँटा-छुरी से खाया जा सकता था)। यूँ भी उसकी हमेशा शिकायत होती थी कि पश्चिमी किस्म का खाना बनाने का मौका उसे कम ही मिल पाता है। सँजू के लिए उसने प्रॉन-कॉकटेल, काकोव्हाँ तथा क्रेप सुजेट्स वाला बढ़िया फ्रांसीसी खाना बनाया।

सँजू प्रमोद से सम्बन्धित क्या कहने वाला है, इसी को सोचते-सोचते मेरा सारा दिन बीत गया। प्रमोद को लेकर अनेक लोगों ने अनेक उल्टी-सीधी चर्चाएँ की थीं - अब सँजू और क्या बताने वाला है! परन्तु साथ ही, यह विचार भी मन में आया कि वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाला, बहुत

कम बोलने वाला सँजू जब खुद उसके बारे में बात करना चाहता है, तब अवश्य ही कोई खास वजह होगी। उसके आने तक मेरी उत्सुकता चरम सीमा पर पहुँच गई थी।

नियत समय पर दरवाज़े की घण्टी बजी और सँजू का आगमन हुआ। किसी परिचित को बहुत वर्षोपरान्त देखने के बाद उसमें जो बदलाव नज़र आते हैं, वैसे ही थोड़े-बहुत बदलाव संजय में भी नज़र आए। वह पहले से अधिक प्रौढ़ एवं गम्भीर प्रतीत हुआ। परन्तु, मुझे ऐसा भी प्रतीत हुआ कि कोई और बदलाव भी निश्चित रूप से उसमें आया है। परन्तु उस बदलाव को मैं पकड़ नहीं पा रहा था। उसकी बातचीत के ढंग और पुरानी यादों के किस्सों में, मैं इस मुद्दे को भूल-सा गया।

खाना अच्छी तरह सम्पन्न हो गया। पिछले पाँच वर्षों में क्या करते रहे... क्या-क्या खोज निकाला, अनुसन्धान कैसा है आदि-आदि मेरे तथा पत्नी के पूछे प्रश्नों के उसने गोल-मोल जवाब दिए। वह हम दोनों से ही अधिक बुलवाने की कोशिश करता रहा। पत्नी की पाक-कुशलता, उस स्वादिष्ट भोजन का मेरे मोटापे से सम्बन्ध, हमारे बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, पत्नी का सोशलवर्क आदि विषय पत्नी को चर्चा हेतु उकसाने के लिए काफी थे। उस बातचीत से मैं सन्तुष्ट नहीं था। मुझे गहरी आशंका ने घेर लिया कि सँजू अपने बारे में कुछ भी कहने में टाल-मटोल कर रहा है। दूसरी बात यह कि हमेशा भोजन से जल्दी निबटने वाला सँजू, आज इतनी धीमी गति से क्यों खा रहा है! उसकी नज़र पहले बड़ी गहरी होती थी, वह आज स्वप्निल

क्यों लग रही है?....इस प्रकार की अनेक आशंकाएँ मेरे मन में उठ रही थीं जिन्हें मैं अनदेखा कर रहा था।

पर, भोजन समाप्त होते-होते एक अजीब बात हो गई जिसने मेरी आशंकाओं की पुष्टि कर दी।

मेरा बारह वर्षीय बेटा अरुण कहानियों की एक किताब ले आया। पाँच वर्ष पहले उसकी और सँजू की गहरी दोस्ती थी। वह पुस्तक आगे बढ़ाते हुए बोला,

"सँजू चाचा, पिछली बार यह किताब आपने मुझे उपहार में दी थी। पर आप भी इतने भुलक्कड़ हैं कि आपने पुस्तक पर लिखा, 'प्यारे अरुण को सप्रेम भेंट' और उसके नीचे अपने हस्ताक्षर ही नहीं किए! अब कर दीजिए..."

सँजू ने किताब को अनदेखा कर दिया और लौटाते हुए कहा, "बेटा अरुण, मैं आज साइन नहीं कर सकता। आज मेरी आँखों में दर्द है। अगली बार कर दूँगा..."

"सिर्फ साईन ही तो करने हैं, सँजू! बहाने क्यों भला? हस्ताक्षर तो आदमी आँख मूँदकर भी कर सकता है!" मैंने संजय को छेड़ा।

"ऐसी कोई बात नहीं है प्रताप! डॉक्टर ने लिखने की पूरी मनाही की है। देखो अरुण, जब अगली बार आऊँगा तब हस्ताक्षर तो करूँगा ही, पर एक नया प्रेज़ेण्ट भी साथ लाऊँगा।"

अरुण कुछ निराश-सा हो गया।

इसके पश्चात् सँजू और मैं अपने स्टडी रूम में गुप्त चर्चा के लिए चले गए। स्टडी का दरवाज़ा बन्द करते ही मैंने अपने मन में उठ रहे प्रश्न को पूछ डाला, "प्रमोद के सम्बन्ध में क्या कहने वाले थे तुम?"

सँजू आराम-से आरामकुर्सी पर बैठते हुए बोला, "रुको ज़रा, प्रताप! मुझे बहुत कुछ कहना है तुमसे! इस दौरान प्रमोद की बात अपने आप आ ही जाएगी। पहले इस चीज़ के प्रति अपने विचार बताओ..."

इतना कहकर सँजू ने अपनी जेब से एक पैकेट निकाला और बड़े एहतियात से उसे खोला।

उस पैकेट से गणेशजी की प्रतिमा निकली। नर्तन करती गणेश प्रतिमा, जिससे मैं परिचित था क्योंकि ऐसी ही प्रतिमा हमारे म्यूज़ियम में भी थी। जानकारों का कहना था कि वह प्रतिमा पेशवाओं के समय की है, और वह शनिवारवाड़ा के महल में पेशवा के पूजाघर में बिराजती थी। वह मूर्ति हमारे म्यूज़ियम में किस तरह से आई, इसका एक लम्बा इतिहास है। वैसे उससे हमें कुछ लेना-देना नहीं है परन्तु, वैसी ही प्रतिमा सँजू के पास कैसे आई होगी? नहीं, क्षमा करें... फर्क था ज़रा-सा, दोनों प्रतिमाओं के बीच। यह गणेशजी दाईं सूँड धारण किए हुए थे।

दाईं सूँड वाले गणेशजी दुर्लभ अवश्य हैं पर अस्तित्व में हैं। फिर भी पेशवा के समय की, दुर्लभ और दाईं सूँड की प्रतिमा सँजू ने कहाँ से प्राप्त की होगी? यह नकली नहीं है, इसे मेरी पारखी नज़र ने तुरन्त परख लिया था। फिर भी मैंने अपने उपकरणों द्वारा उसे जाँच-परख लिया। वह नकली प्रतिमा नहीं थी।

"कहिए क्यूरेटरजी! है कि नहीं, दुर्लभ वस्तु?" मुस्कराते हुए सँजू ने पूछा।

"हाँ! वाकई! वह इतनी दुर्लभ है कि उसके नकली होने की आशंका उठी मेरे मन में। परन्तु यह असली है, अब इसका यकीन हो गया है मुझे। मेरे म्यूज़ियम में इसी प्रकार की गणेश मूर्ति है, पर बाईं सूँड वाली!" मैंने कहा।

"वाकई?" सँजू के इस प्रश्न में आश्चर्य से अधिक मज़ाक की भावना थी। वह आगे बोला, "किसी समय फुरसत से दिखा देना मुझे। पर, मुझे शक है कि ऐसी प्रतिमा तुम्हारे पास होगी! सुनो, इस गणेशजी को अपने

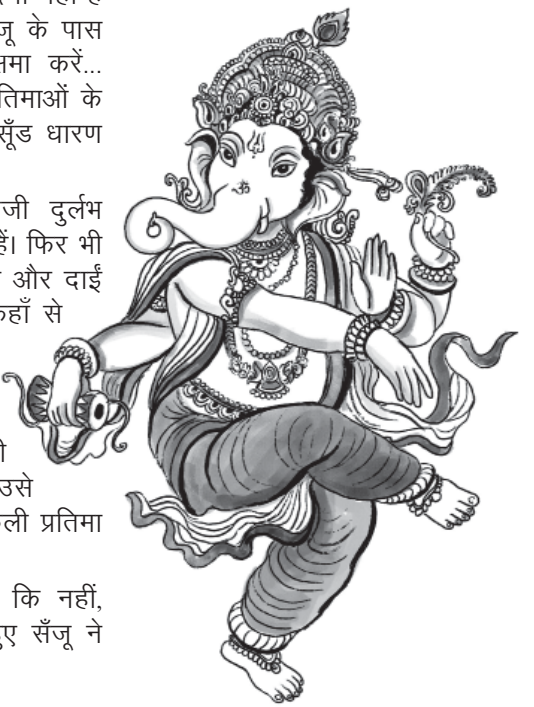

म्यूज़ियम में मेरे उपहार के तौर पर रख लो।"

"म्यूज़ियम के ट्रस्टीज़ की ओर से मैं तुम्हारा आभारी हूँ, सँजू! उनका पत्र तुम्हें मिलेगा ही... पर तुम नहीं जानते कि कितनी मौलिक वस्तु दे रहे हो म्यूज़ियम को तुम!" मेरी आवाज़ भर्रा गई थी। "पर क्या तुम मुझे बता सकते हो कि ये गणेशजी तुम्हें कहाँ मिले? म्यूज़ियम में आई ऐसी दुर्लभ वस्तुओं के प्रति सभी के मन में जिज्ञासा बनी रहती है।"

"वही बताने जा रहा हूँ मैं! पर, इस जानकारी को गुप्त रखना होगा और इसका सम्बन्ध प्रमोद से भी है..." सँजू बोला।

गणपति के झमेले में मैं मूल मुद्दे को करीब-करीब भूल ही गया था। सँजू की बात सुनकर मेरा कौतूहल अब और बढ़ गया था।

"गणेशजी की कथा से पहले मैं तुमसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ, प्रताप! तुम मेरे बचपन के मित्र हो। यदि तुमसे कोई यह पूछे कि सँजू की पहचान के लिए उसके शरीर पर कोई निशान है क्या, तो क्या जवाब होगा तुम्हारा?"

इस प्रश्न से मेरा कौतूहल और भी बढ़ गया। प्रमोद की गेंदबाज़ी, दाईं सूँड वाले गणेशजी और सँजू का उक्त प्रश्न! क्या मतलब है इस सब का? मेरा तो दिमाग चकरा गया। फिर भी सँजू के प्रश्न का जवाब था मेरे पास।

"तुम्हारी बाईं भुजा पर तितली जैसा निशान है! याद है, मैं और प्रमोद इस बात को लेकर कितना मज़ाक उड़ाते थे तुम्हारा!"

सँजू ने अपनी शर्ट की आस्तीन ऊपर उठाकर बाईं भुजा को दिखाया। उस बाँह पर से वह जन्म-निशान गायब था। मेरा दिमाग चकरा गया, तब सँजू ने हौले-से दाहिनी भुजा की ओर संकेत किया...

वह निशान वहाँ बना था। मेरा दिमाग चकराने लगा।

"ओय प्रताऽऽऽप! उठ भैय्या...!" सँजू मुझे होश में लाने की कोशिश में लगा था। पलभर के लिए मुझे लगा कि जैसे मैं नींद से जाग रहा हूँ। या मैं किसी स्वप्न में हूँ। दरअसल, सँजू से बातें करते-करते मैं बेहोश हो गया था।

"सॉरी! मेरी बातों का तुम पर इतना गहरा प्रभाव पड़ेगा, यह नहीं जानता था मैं! मैं ज़िन्दा... हाड़-माँस का जीता-जागता सँजू हूँ...भूत नहीं!"

"तब तुम्हारा जन्म-निशान कैसे बदल गया?" मैंने डरते-डरते पूछा। इसके जवाब में सँजू ने मेरी हथेली को हौले-से अपनी छाती पर घुमाया। उसका दिल दाहिनी ओर धड़क रहा था!

अब मेरी समझ में कुछ-कुछ आने लगा। प्रमोद की बाईं गेंदबाज़ी, दाईं सूँड वाले गणेशजी, दाहिनी ओर धड़कता सँजू का दिल... यह सब

कहीं तो आपस में जुड़ा है। मन में एक अत्यन्त विचित्र-सा विचार कौंध गया कि ये सब आईने में बन रहे प्रतिबिम्ब तो नहीं होंगे? मैंने गणेश मूर्ति को छुआ था। सँजू को टटोला था। बल्लेबाज़ों को आउट करवाते प्रमोद को सिर्फ मैंने ही नहीं... हज़ारों ने देखा था। और तो और... निर्जीव टी.वी. ने भी देखा था! वे सारे मात्र आईने के प्रतिबिम्ब नहीं थे बल्कि सत्य रूप से उजागर हुईं घटनाएँ थीं।

फिर भी मैंने सँजू को आईने के सामने खड़ा किया और तुरन्त मेरी आशंका दूर हो गई। आईने वाला सँजू मुझे अधिक परिचित लगा। प्रतिबिम्ब से हम सिर्फ इतना ही जान सकते हैं कि हम कैसे लगते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष और प्रतिबिम्ब में थोड़ा-सा फर्क होता ही है। अपने अन्तर्मन में इसी फर्क को मैंने महसूस किया था। आज मेरे घर आया सँजू, मूल सँजू न होकर, मात्र एक जीती-जागती प्रतिमा थी... पर यह कैसे सम्भव हुआ होगा? और मूल सँजू कहाँ गया होगा भला?

"तुम्हें लग रहा है कि मैं कोई और हूँ... जो संजय की प्रतिमा बन आया हूँ?" सँजू ने अथवा उस 'जीव' ने मेरी विचार शृंखला को ठीक ही पहचान लिया था। "नहीं! मैं असली सँजू ही हूँ... सिर्फ मेरा रूपान्तर मेरे प्रतिबिम्ब में हो गया है।"

"ऐसा कैसे हो सकता है भला?"

"वही बताने मैं यहाँ आया हूँ। जो कुछ मैं बताने जा रहा हूँ, वह सत्य है... चाहे तुम विश्वास करो या न करो! पर उसे अपने तक ही सीमित रखना होगा तुम्हें!"

...जारी

जयंत विष्णु नारलीकर (1938): प्रबुद्ध वैज्ञानिक और विज्ञान कथाकार। कैंब्रिज से गणित में डिग्रियाँ हासिल करने के बाद उन्होंने खगोल-विद्या और खगोल-भौतिकी में विशेष प्रावीण्य प्राप्त किया। किंग्ज़ कॉलेज के फेलो और इंस्टिट्यूट ऑफ थिओरेटिकल एस्ट्रोनॉमी के संस्थापक सदस्य के रूप में कुछ समय कैंब्रिज में रहे। IUCAA (Inter-University Centre for Astronomy and Astrophysics), पुणे के संस्थापक सदस्य। नारलीकर 'पद्मभूषण' और 'पद्मविभूषण' सहित कई राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

सभी चित्र: श्रेया टी.एस.: एनिमेटर और इलस्ट्रेटर हैं। कम्यूनिकेशन डिज़ाइन में विशेषज्ञता के साथ एनआईडी से स्नातक किया है। बच्चों की कहानी की किताबों और कॉमिक्स पर काम करना बेहद पसन्द है। इन्हें अपने बचपन की कहानियों और अपने दैनिक जीवन में देखी जाने वाली कहानियों से प्रेरणा मिलती है।

यह कहानी सन् 2013 में *विज्ञान प्रसार* द्वारा प्रकाशित जयंत विष्णु नारलीकर के विज्ञान कथाओं के संकलन *कृष्ण विवर और अन्य विज्ञान कथाएँ* से साभार।

सवालीराम

सवाल: पानी को उबालने पर उसके स्वाद में परिवर्तन क्यों हो जाता है?

– गंधर्व कुमार, भोपाल, म.प्र.

जवाब 1: हमारी स्कूली किताबों में लिखा होता है कि पानी रंगहीन, गन्धहीन और स्वादहीन होता है। दूसरी तरफ हमारा रोज़मर्रा का अनुभव यह कहता है कि पानी में कुछ विशिष्ट स्वाद होता है। पानी का घूँट लेते ही हम कह उठते हैं कि पानी मीठा अथवा खारा है। क्या आपके मन में कभी यह सवाल नहीं आया कि एक स्वादहीन तरल में स्वाद की बात कहाँ से आ गई? क्या आपके गिलास में उड़ेला गया पानी और पाठ्यपुस्तकों का पानी अलग-अलग हैं?

शायद हैं। पाठ्यपुस्तकों में वर्णित पानी से आशय है, आसवन और कुछ अन्य तकनीकी उपचार से प्राप्त पानी जो 100 प्रतिशत शुद्ध होता है। ऐसे शुद्ध पानी का उपयोग विज्ञान प्रयोगशालाओं, दवा-चिकित्सा, बैटरियों में एवं इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों आदि में होता है। यह पानी पाठ्यपुस्तकों में वर्णित 'रंगहीन-गन्धहीन-स्वादहीन' होता है।

दूसरी ओर, पीने का साधारण पानी है। इसमें कई खनिज लवण और अन्य पदार्थ घुले होते हैं। ये पदार्थ पानी में उसके परिवेश से आते हैं – जिन चट्टानों एवं मिट्टी के सम्पर्क में पानी आता है, वहाँ से घुल-

मिल जाते हैं। आपको पाठ्यपुस्तक की एक और बात याद होगी – पानी सार्वभौमिक विलायक है (मतलब यह बहुत सारे पदार्थों को घोल लेता है)। इसके अलावा कुछ चीज़ें घुलित अवस्था में न होकर निलम्बित अवस्था में होती हैं। इस पानी में विविध खनिजों और गैसों की मौजूदगी की वजह से कुछ स्वाद या फ्लेवर होता है। यानी कि स्वाद उस पानी में घुलित पदार्थों की वजह से होता है।

अब आते हैं उबालने पर।

पानी में आम तौर पर सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम के लवण पाए जाते हैं। ये लवण क्लोराइड, फ्लोराइड, कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट, सल्फेट वगैरह होते हैं। उबालने के सन्दर्भ में इनमें से वास्तव में बाइकार्बोनेट लवणों पर ध्यान देना होगा। इन लवणों की एक विशेषता यह है कि गर्म करने पर ये विघटित हो जाते हैं और कार्बोनेट लवण बनाते हैं। पानी को उबालने पर बाइकार्बोनेट लवण टूटकर कार्बोनेट लवण में बदल जाते हैं। स्वाद में परिवर्तन का एक कारण तो यही है।

दूसरा कारण ज़्यादा मज़ेदार है – कैल्शियम और मैग्नीशियम के बाइकार्बोनेट तो पानी में घुलनशील होते हैं लेकिन कार्बोनेट अघुलनशील होते हैं। जैसे ही पानी को गर्म किया जाता है (उबालने तक न जाएँ तो भी) कैल्शियम, मैग्नीशियम के बाइकार्बोनेट टूटकर कार्बोनेट बना लेते हैं और अघुलनशील हो जाते हैं। यानी ये उबले पानी में अनुपस्थित हो जाते हैं – तो स्वाद तो बदलेगा ही। आपने देखा भी होगा कि किसी-किसी स्थान, किसी-किसी कुँए का पानी गर्म करें तो बर्तन में कुछ सफेद-सा जम जाता है। यह मैग्नीशियम एवं कैल्शियम के घुलनशील बाइकार्बोनेट के विघटन से बने अघुलनशील कार्बोनेट की सफेदी होती है।

स्वाद की बात तो हो गई। यहाँ कैल्शियम-मैग्नीशियम लवणों की एक और विशेषता पर बात प्रासंगिक होगी। आम तौर पर पानी में कैल्शियम और मैग्नीशियम के घुलित लवणों के कारण पानी कठोर हो जाता है। कठोर पानी यानी वह पानी जिसमें साबुन पर्याप्त झाग नहीं देता। बात साबुन की है, डिटर्जेंट की नहीं। एक बात और – कठोर पानी को पीने में कोई दिक्कत नहीं है, सिवाय इसके कि कभी-कभी उसका स्वाद बहुत नहीं सुहाता। और यह भी आम अनुभव है कि खारे यानी कठोर पानी में दाल नहीं गलती। लेकिन उसका सम्बन्ध किसी विशिष्ट लवण से नहीं है। दाल न गलने की बात फिर कभी करेंगे। तब तक आप भी सोचिए।

सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

जवाब 2: आप गर्मी की छुट्टियों में अपनी नानी-दादी के यहाँ अवश्य गए होंगे, या किसी अन्य स्थान पर घूमने गए होंगे। क्या आपने वहाँ के पानी और अपने मूल स्थान के पानी के स्वाद में कोई बदलाव महसूस किया है? थोड़ा और सोचिए, क्या कभी आपने अपने दैनिक स्रोत की बजाय किसी अन्य स्रोत से प्राप्त पानी का उपयोग किया है? यदि नहीं तो जब मौका मिले तब अवश्य कीजिएगा। तब आप जान जाएँगे कि सिर्फ उबालने पर ही नहीं बल्कि विभिन्न जगहों व विभिन्न स्रोतों से प्राप्त पानी के स्वाद में भी बहुत अन्तर होता है।

आइए, अब इसका कारण समझते हैं। दरअसल, सामान्य पानी में घुली हुई गैसें और खनिज मौजूद होते हैं जो इसे स्वाद देते हैं। यही कारण है कि हर जगह इसका स्वाद थोड़ा अलग हो सकता है। जब आप इसे उबालते हैं तो कुछ गैसें निकल जाती हैं और कुछ खनिज, कुछ अलग खनिज रूपों में टूट जाते हैं जिससे स्वाद में परिवर्तन आ जाता है।

प्राकृतिक जल में कुछ अतिसूक्ष्म जीव भी मौजूद होते हैं। पानी को उबालने पर लगभग सभी बैक्टीरिया, वायरस एवं प्रोटोज़ोआ मर जाते हैं। यह पानी पीने की दृष्टि से सुरक्षित हो जाता है, लेकिन स्वाद बदलने में इसका भी योगदान होता है। यह कच्चे आलू और उबले आलू या कच्चे अण्डे और उबले अण्डे खाने जैसा है। इनका स्वाद भी उबालने पर बदल जाता है जिसका एक कारण उनकी रासायनिक संरचना में परिवर्तन होना भी होता है।

अंकिता चतुर्वेदी: अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, भोपाल में विज्ञान की रिसोर्स पर्सन हैं।

इस बार का सवाल: जब कुत्ता पेशाब करता है तो वह एक टांग क्यों उठा लेता है?

- आदिवासी आश्रमशाला, महाराष्ट्र

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

Encyclopedia of the Animal world पुस्तक से साभार

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर,
जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।